ISSN: 3049-2211

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

खंड-2 अंक- 4, अप्रैल- 2026

Krishakmanch.com

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

ISSN: 3049-2211

सम्पादक मंडल

डा. देवराज सिंह

मुख्य सम्पादक
सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष
सब्जी विज्ञान विभाग
कृषि विज्ञान विभाग, इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

प्रिया पाण्डेय

सहायक मुख्य सम्पादक
शोधार्थी
ए.के.एस. विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)।

सहायक सम्पादक

डा. विक्रमा प्रसाद पाण्डेय
पूर्व अधिष्ठाता (उद्यान महाविद्यालय)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. अरविन्द कुमार चौरसिया
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)।

डा. महेन्द्र कुमार यादव
सहायक प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. वर्तिका सिंह
सहायक प्राध्यापक (फल विज्ञान)
आई.टी.एम. विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)।

डा. सचि गुप्ता
सहायक प्राध्यापक (पुष्प विज्ञान)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. रविकेश कुमार पाल
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
रामा विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)।

डा. सरिता
सहायक प्राध्यापक (पौध रोग विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. रविशंकर
सहायक प्राध्यापक (कीट विज्ञान)
स.व.भा.प.कृ. एवं प्रौ. वि.वि., मेरठ (उ.प्र.)।

डा. देवेश तिवारी
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, तूरा कैंपस (मेघालय)।

डा. कुमार अंशुमान
सहायक प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)
के.एन.आई.पी.एस.एस., सुल्तानपुर (उ.प्र.)।

डा. मंजीत कुमार
सहायक प्राध्यापक
लिंगायस विद्यापीठ, फरीदाबाद, हरियाणा।

डा. विवेक पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

डा. कल्याण सिंह
स्वतंत्र लेखक
बांदा कृ. एवं प्रौ. वि.वि., बांदा (उ.प्र.)।

डा. शिवशंकर पटेल
शोधार्थी
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)।

ISSN: 3049-2211

विषय वस्तु

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ सं.
1	प्राकृतिक खेती: आज की आवश्यकता।	4-9
2	कृषि छात्रों की पहल: प्लास्टिक बैग में वर्मी कम्पोस्ट।	10-12
3	नींबू वर्गीय फसलों में लेमन बटरफ्लाई का समेकित कीट प्रबंधन: एक व्यावहारिक दृष्टिकोण।	13-16
4	कृषि में मौसम कारकों का महत्व।	17-21
5	पोल्ट्री में हीट स्ट्रेस – समस्या और समाधान।	22-24
6	प्राकृतिक खेती में रेखा सिंह का योगदान: महिलाओं को मिला रोजगार।	25-27
7	ग्रीष्मकालीन मूँग की खेती में कीटों का प्रकोप और प्रबंधन।	28-30
8	कृषि कार्यों के लिए विशेष यंत्र।	31-33
9	लम्पी त्वचा रोग के प्रति जागरुकता, बचाव व रोकथाम के उपाय।	34-36
10	भिण्डी उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक।	37-39
11	जैविक मल्चिंग: सब्जियों का गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के लिए उत्कृष्ट तकनीक।	40-46
12	रागी की वैज्ञानिक खेती।	47-53
13	डिजिटल प्रौद्योगिकी के माध्यम से मधुमक्खी पालन का आधुनिकीकरण: ग्रामीण भारत के लिए एक टिकाऊ आय मॉडल।	54-58
14	पूर्वी उत्तर प्रदेश में धान की सीधी या जीरो टिल से बुवाई के लाभ।	59-60
15	उन्नत पैदावार हेतु संशोधित बायोगैस स्लरी का सुदृढ़ीकरण: उत्पादन की दिशा में एक प्रभावी कदम।	61-63
16	मानव आहार और स्वास्थ्य में रागी का महत्व, फायदे, उपयोग और संभावित नुकसान।	64-66
17	सटीक फसल उगाने के नए तरीके।	67-73
18	प्याज की लाभकारी एवं उन्नत खेती।	74-76
19	कॉलेज छात्राओं की दैनिक आदतों का उनके शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव।	77-78
20	अधिकतम लाभ और उच्च फसल चक्र सघनता के लिए अगेती सब्जी मटर की वैज्ञानिक खेती।	79-82
21	फूलगोभी की उन्नत खेती।	83-85
22	कटहल के बीज और डंठल की सब्ज़ी – एक पौष्टिक, पारंपरिक और "नो-वेस्ट" देसी व्यंजन।	86-88

प्राकृतिक खेती: आज की आवश्यकता

डॉ० सुनील कुमार मंडल एवं डॉ० सुरेन्द्र प्रसाद

सहायक प्राध्यापक

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

किसान पिछले कई वर्षों से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का प्रयोग फसलों पर करते आ रहे हैं, जिससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति लगभग खत्म हो चुकी है एवं भूमि के प्राकृतिक स्वरूप में भी बदलाव हो रहे हैं, जो किसानों के लिए काफी नुकसानदायक हैं। रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, कवकनाशकों व खरपतवारनाशकों के उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण के अंतर्गत जल, वायु और मृदा का प्रदूषण भी दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। किसानों की फसल के पैदावार की कमाई का अनुमानित आधा हिस्सा इन रासायनिक आदानों (इनपुट) पर खरीदनें में चला जाता है, क्योंकि ये आदान काफी महंगे होते हैं। कभी-कभी ये आदान समय पर बाजारों में उपलब्ध भी नहीं होते है, जिसके परिणाम स्वरूप फसलों के उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए वर्तमान के समय में प्राकृतिक खेती की आवश्यकता महसूस हो रही है।

प्राकृतिक खेती, कृषि की एक प्राचीन पद्दति है। यह खेती एक रसायन-मुक्त कृषि प्रणाली है जो भारतीय परम्पराओं में निहित है और पारिस्थितिकी संसाधन पुनर्चकरण और कृषि संसाधन अनुकूलन की आधुनिक समझ से समृद्ध है। इसे कृषि पारिस्थितिकी आधारित विविध कृषि प्रणाली माना जाता है जो फसलों, पेड़ों और पशुधन को कार्यात्मक जैव-विविधता के साथ एकीकृत करती है। मुख्य रूप से कृषि आधारित गोमूत्र-गोबर संयोजनों के उपयोग, मृदा वातन और सभी कृत्रिम रासायनिक आदानों के वहिष्कार पर विशेष जोर दिया जाता है। प्राकृतिक खेती से खरीदे गये आदानों पर निर्भरता कम होने की उम्मीद होती है। इसे एक लागत-प्रभावी कृषि पद्दति माना जाता है, जिससे रोजगार और ग्रामीण विकास में वृद्धि की संभावना है।

प्राकृतिक खेती के प्रकार

प्राकृतिक खेती के कई प्रकार है, जिसके अंतर्गत शून्य बजट प्राकृतिक खेती सबसे प्रमुख है, जिसमें देशी गाय के गोबर और मूत्र जैसे प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके खेती की जाती है। अन्य प्रकारों में जैविक खेती, पुनर्योजी खेती, कृषि पारिस्थितिकी, कृषि वानिकी, टिकाऊ कृषि, पारिस्थितिकी कृषि और पर्माकल्चर शामिल है, जो सभी रसायनों के उपयोग से बचते है और मिट्टी के स्वास्थ्य और स्थिरता पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

प्राकृतिक खेती की आवश्यकता के मुख्य कारण

1. मृदा स्वास्थ्य में सुधार:

- लगातार रासायनिक खेती से मिट्टी की जैविक संरचना और उर्वरता कम हो गई है।

- प्राकृतिक खेती की मिट्टी में सुक्ष्मजीवों, केंचुओं और अन्य लाभकारी जीवों को बढ़ावा देती है, जिससे मिट्टी फिर से जीवंत और उपजाऊँ बनती है।
- यह मिट्टी की जलधारण क्षमता को बढ़ाती है, जिसमें पानी की बचत होती है।

2. पर्यावरण संतुलन और संरक्षण:

- रासायनिक कीटनाशकों, फफूंदनाशकों, खरपतवारनाशकों और उर्वरकों के उपयोग को खत्म करके यह जैव विविधता को बनाए रखती है।
- रासायनिक अपवाह में होने वाले जल प्रदूषण को कम करती है।
- यह कार्बन अवशोषण में मदद करती है, जिससे जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में सहायता मिलती है।

3. स्वास्थ्य जोखिमों में कमी:

- रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों से पैदा होने वाले खाद्द पदार्थों में जहरीले अवशेष रह सकते है, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकते हैं।
- प्राकृतिक खेती से उगाये गये खाद्द पदार्थ सुरक्षित और पौष्टिक होते हैं।

4. किसानों की आय में वृद्धि और लागत में कमी:

- प्राकृतिक आदानों जैसे जीवामृत और बीजामृत का उपयोग करके उत्पादन लागत को कम किया जा सकता है, क्योंकि इन्हें किमान स्वयं ही खेत पर तैयार कर सकते हैं।
- इससे किसान रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों एवं अन्य कृषि रसायनों पर निर्भर नहीं रहते, जिससे आर्थिक बोझ कम होता है।

5. जल संरक्षण:

- यह वाफसा (भूमि में वायु प्रवाह) की स्थिति को बेहतर करती है।
- मल्चिंग (फसलों को जैविक पदार्थों से ढकना) से मिट्टी में नमी बनी रहती है, जिससे कम सिंचाई जल की जरूरत होती है। विशेषकर सुखाड़ की स्थिति में।

प्राकृतिक खेती कैसे करें ?

प्राकृतिक खेती करने के लिए रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों की बजाय जीवामृत, बीजामृत और दशपर्णी अर्क जैसे प्राकृतिक उत्पादों का उपयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त मल्चिंग और फसल-चक्र जैसे तकनीकों को अपनाकर मिट्टी की उर्वरता बढ़ाएँ और जैविक कीटनाशकों जैसे नीम का तेल व नीमास्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

प्राकृतिक खेती के तरीके:

- **जैविक खाद प्रबंधन:** गोबर की खाद, वर्मी कम्पोस्ट, और हरी खाद का उपयोग करना चाहिए। इसके लिए देसी गाय के गोबर और गोमूत्र से जीवामृत और धनजीवामृत जैसे उर्वरक घर पर ही तैयार करना चाहिए।
- **कीट और रोग नियंत्रण:** रासायनिक कीटनाशकों की जगह दशपर्णी अर्क और अग्नि अस्त्र जैसे प्राकृतिक अर्क का छिड़काव करना चाहिए, जिनमें नीम और मिर्च जैसी सामग्रियों का उपयोग होता है।
- **मृदा स्वास्थ्य:** गहरी जुताई से बचना चाहिए, क्योंकि इससे मिट्टी के सूक्ष्मजीव और केंचुए मर जाते हैं। इसके बजाय, मल्चिंग (फसल अवशेषों से जमीन को ढ़कना) का उपयोग करना चाहिए, जो मिट्टी की नमी बनाए रखने में मदद करता है।
- **फसल प्रबंधन:** फसल-चक्र अपनाएँ और एक ही खेत में कई फसलें (फसल विविधीकरण) उगाना चाहिए, जैसे बैगन के साथ मेंथी, मटर के साथ चना या चना के साथ धनियां या सरसों।
- यह सुनिश्चित करने के लिए कि मिट्टी की उर्वरता बनी रहे इसके लिए अपनी फसलों को अलग-अलग समय व मौसम पर उगाना चाहिए।
- **सिंचाई:** प्राकृतिक खेती में, सिंचाई करते समय पानी को पौधों की जड़ों से थोड़ा दूर रखना चाहिए, जिससे मिट्टी में नमी बनी रहे और पानी का वाष्पीकरण कम हो। यह तकनीक खासकर सब्जियों अथवा फलों की खेती के लिए अधिक उपयुक्त है।

अन्य महत्वपूर्ण बाते:

- **अतिरिक्त लाभ:** प्राकृतिक खेती मिट्टी की गुणवत्ता, उत्पादन और किसानों की आय को बढ़ाती है, साथ ही पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य के लिए भी बेहतर है।
- **सरकारी योजनाएँ:** सरकार प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय प्राकृतिक खेती मिशन के अंतर्गत अनुदान, प्रशिक्षण और अन्य प्रकार की सहायता भी प्रदान करती है।

प्राकृतिक खेती की शुरूआत कैसे करें ?

प्राकृतिक खेती करने के लिए कुछ तरीके है:

1. जैविक उर्वरक का उपयोग: गोबर की खाद, नैडेप कम्पोस्ट और वर्मीकम्पोस्ट।

2. हरी खाद का उपयोग: नीम की पत्तियाँ, तुलसी की पत्तियां, धतुरा व बेल की पत्तिया, ढ़ैचा व वरसीम।

ISSN: 3049-2211

प्राकृतिक खेती के घटक:

प्राकृतिक खेती के मुख्य घटक जीवामृत, बीजामृत, मल्चिंग और वापसा है। इसके अतिरिक्त, इसमें देशी गाय का उपयोग, कम जुताई, बहु-फसल प्रणालियाँ और विभिन्न वानस्पतिक मिश्रणों (जैसे ब्रह्मास्त्र) का उपयोग भी शामिल है। ये घटक मिट्टी की उर्वरता, पौधो की वृद्धि और कीट व रोग के नियंत्रण में सहायता करते हैं।

वापसा:

इसका सिद्धांत यह है कि पौधों को पानी नहीं, बल्कि नमी की आवश्यकता होती है, जिससे मिट्टी में 50 प्रतिशत हवा और 50 प्रतिशत नमी के संतुलन के रूप में बनायें रखा जाता है। ड्रिप सिंचाई जैसी तकनीकों का उपयोग करके इसे प्राप्त किया जा सकता है।

प्राकृतिक खेती के सिद्धान्त

प्राकृतिक खेती के मुख्य सिद्धान्त है कि मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने के लिए रासायनिक उर्वरकों एवं खादों का उपयोग न किया जाए, जुताई न की जाय और प्रकृति के प्राकृतिक चक्रों के साथ काम किया जाए। इसके चार प्रमुख सिद्धान्त है: मिट्टी की उर्वरता बनायें रखना, रासायनिक आदानों (इनपुट) से बचना, जैव विविधता को बढ़ावा देना और पर्यावरणीय प्रदूषण को कम करना।

- ✓ **रासायनिक खादों का उपयोग न करना:** प्राकृतिक खेती में बाहरी खादों जैसे कि रासायनिक खाद या कीटनाशकों का उपयोग नहीं किया जाता है। इसके बजाय मिट्टी में मौजूद सूक्ष्मजीवों और केंचुओं के द्वारा कार्बनिक पदार्थों के अपघटन को प्रोत्साहित किया जाता है।
- ✓ **जुताई और मिट्टी को पलटना नहीं:** प्राकृतिक खेती में मिट्टी को पलटने या जुताई करने से बचा जाता है। यह मिट्टी की संरचना को बनाए रखने में मदद करता है और मिट्टी में रहने वाले लाभकारी जीवों को नुकसान नहीं पहुँचाता है।
- ✓ **प्रकृति से तालमेल:** यह विधि प्रकृति के प्राकृतिक चक्रों का पालन करती है और प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र की तरह काम करती है। यह खेती रासायनिक आदानों के बजाय प्रकृति के साथ मिलकर काम करने पर केन्द्रित है।
- ✓ **जैव विविधता को बढ़ावा देना:** फसलों की विविधता, अंतर-फसल (इंटरक्रोपिंग) और मल्चिंग जैसी विधियों का उपयोग करके जैव विविधता को बढ़ाया जाता है।
- ✓ **मिट्टी की उर्वरता और स्वास्थ्य में सुधार:** प्राकृतिक तरीकों से मिट्टी की संरचना, उर्वरता और सूक्ष्मजीव गतिविधि में सुधार होता है, जिससे फसल की पैदावार बढ़ती है और मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है।
- ✓ **लागत में कमी:** बाहरी और महंगे रासायनिक आदानों (इनपुट) का उपयोग नहीं करने से किसानों की उत्पादन लागत कम हो जाती है।
- ✓ **पर्यावरणीय लाभ:** यह मिट्टी के कटाव को कम करता है, जल संसाधनों का संरक्षण करता है, और वायु व जल प्रदूषण को कम करता है।

प्राकृतिक खेती के अन्य मुख्य सिद्धान्त

रसायन मुक्त खेती, पशुधन पर आधारित संसाधन का उपयोग, मृदा स्वास्थ्य का संरक्षण, अच्छादन (मल्चिंग), स्थानीय संसाधनों का उपयोग और प्रकृति के साथ सामंजस्य।

प्राकृतिक खेती के स्तंभ

प्राकृतिक खेती के चार आधार (स्तम्भ)- जीवामृत, बीजामृत, अच्छादान (जैविक मल्चिंग) और वापसा (मृदा नमी) है, जिन्हे सुभाष पालेकर ने विकसित किया है और जो मिट्टी की उर्वरता, कीटों व बीमारियों का प्रबंधन और पौधों की स्वस्थ्य वृद्धि के लिए आवश्यक है। ये चारों स्तम्भ कृषि की रासायन मुक्त, टिकाऊँ और स्थानीय संसाधनों पर आधारित बनाने में मदद करते हैं।

प्राकृतिक खेती के चार आधार (स्तम्भ) निम्न उल्लेखित है:

1. जीवामृत: यह गाय के गोबर, गोमूत्र, गुड़, बेसन, मिट्टी और पानी को मिलाकर बनाया जाने वाला एक तरल मिश्रण है, जो मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या को बढ़ाती है और पौधों के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता को सुनिश्चित करता है।

2. बीजामृत: यह बीजों को उपचारित करने के लिए तैयार किया जाता है, जिसमें देशी गाय का गोबर, गोमूत्र, मिट्टी और पानी का उपयोग किया जाता है। यह बीजों के अंकुरण को बढ़ावा देता है और उन्हें कीटों और बीमारियों के प्रकोप से बचाता है।

3. अच्छादन (मल्चिंग): इसमें फसल अवशेषों, सूखी पत्तियां या अन्य जैविक पदार्थों (पुआल व भूसी) से मिट्टी को ढ़क दिया जाता है, जिससे मिट्टी की नमी बनी रहती है, खरपतवार कम उगते है और मिट्टी के सूक्ष्मजीवों को पोषण मिलता है।

4. वापसा: यह एक ऐसी स्थिति है, जहाँ मिट्टी में पर्याप्त आद्रर्ता और वायु का संचार होता है, जिससे मिट्टी की संरचना बेहतर होती है और पौधों की जड़े स्वस्थ रहती है। अच्छादन और अन्य विधियों (डिप सिंचाई व स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति) से मिट्टी में 'वापसा' की स्थिति बनी रहती है।

ISSN: 3049-2211

प्राकृतिक खेती के लाभ

प्राकृतिक खेती से किसानों की लागत कम होती है, आय बढ़ती है और मिट्टी व पर्यावरण को भी लाभ होता है। यह स्वस्थ भोजन प्रदान करती है, रासायनिक आदानों (इनपुट) पर निर्भरता कम रहती है और जल संरक्षण में मदद करती है। इसके अतिरिक्त यह मिट्टी की उर्वरता और जैवविविधता में सुधार करती है, जिससे जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में मदद मिलती है।

आर्थिक लाभ:

- ✓ **लागत में कमी:** सिंथेटिक उर्वरकों, कीटनाशकों और खरपतवारों के उपयोग को समाप्त करने से लागत कम होती है।
- ✓ **आय में वृद्धि:** समान पैदावार होने के बावजूद, लागत कम होने से किसानों के शुद्ध आय में वृद्धि होती है।

पर्यावरणीय लाभ:

- ✓ **मिट्टी का स्वास्थ्य:** यह मिट्टी के लाभकारी सूक्ष्मजीवों को पुर्नजीवित करती है, जिससे मिट्टी की संरचना, उर्वरता और स्वास्थ्य में सुधार होता है।
- ✓ **जल संरक्षण:** मल्चिंग जैसी विधियां नमी बनाये रखती है, जिससे पानी की खपत लगभग 60 प्रतिशत तक कम हो जाती है।
- ✓ **पर्यावरण संरचना:** यह रासायनिक प्रदुषण को कम करती है, जैवविविधता को बढ़ाती है और कार्बन उत्सर्जन को कम करती है।

स्वास्थ्य लाभ:

- ✓ **पौष्टिक भोजन:** प्राकृतिक खेती से प्राप्त भोजन में पोषण घनत्व अधिक होता है।
- ✓ **स्वास्थ्य का कम जोखिम:** सिंथेटिक रसायनों के उपयोग से बचा जाता है, जिससे स्वस्थ्य का जोखिम कम होते हैं।

अन्य लाभ:

- ✓ **रोजगार सृजन:** कृषि मूल्य श्रृंखला में रोजगार के नये अवसर पैदा होते हैं।
- ✓ **लचीलापन:** यह खेतों को जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति अधिक लचीला बनाती है।
- ✓ **जल स्तर में वृद्धि:** मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ने से भूजल स्तर में वृद्धि होती है।
- ✓ **सामाजिक लाभ:** आत्मनिर्भरता और टिकाउपन, पारस्परिक सहयोग और खाद सुरक्षा सुनिश्चित करती है।
- ✓ **पशुधन स्थिरता:** कृषि प्रणाली में पशुधन का एकीकरण प्राकृतिक खेती में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और पारिस्थितिकी तंत्र को बहाल करने में मदद करता है। जीवामृत और बीजामृत पर्यावरण-अनुकूल जैविक उत्पाद है जो देशी गाय का गोबर, गोमूत्र और अन्य प्राकृतिक उत्पादों से तैयार किये जाते हैं।

प्राकृतिक खेती का महत्व

प्राकृतिक खेती स्वास्थ्य, पर्यारण और किसानों की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने में सहयोग करते हैं। यह रासायनिक मुक्त और पोष्टिक भोजन प्रदान करती है, मिट्टी की गुणवत्ता और जैवविविधता को बढ़ाती है और लागत घटाकर किसानों की आय में वृद्धि करती है। इसके अतिरिक्त, यह जलवायु परिवर्तन से निपटने में भी सहायक होता है। प्राकृतिक खेती के महत्व निम्न उल्लेखित है-

आर्थिक लाभ:

- ♣ रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों पर होने वाले खर्च को कम करके लागत को कम करती है।
- ♣ फसलों की बेहतर गुणवत्ता और उच्च बाजार मूल्य से किसानों की आय बढ़ती है।
- ♣ रोजगार के अवसर पैदा करती है, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में।

स्वास्थ्य लाभ:

- ♣ रासायन मुक्त और पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराती है जिससे स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का खतरा कम होता है।
- ♣ उत्पादों में हानिकारक रसायनों की मात्रा कम होती है और एंटीआक्सीडेंट व रेशा (फाइवर) जैसे पोषक तत्व अधिक होते हैं।

पर्यावरणीय लाभ:

- ♣ मिट्टी की उर्वरता और गुणवत्ता में सुधार करती है और रासायनिक उपयोग के कारण होने वाले मिट्टी के क्षरण को रोकती है।
- ♣ जैव विविधता को बढ़ावा देती है और एक स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र का पोषण करती है।
- ♣ पर्यावरणीय प्रदूषण को कम करती है तथा जल संचयन में मदद करती है।

मिट्टी और जल प्रबंधन:

- ♣ जैविक पदार्थो को बढ़ाकर मिट्टी की संरचना में सुधार करती है और सूक्ष्मजीवों की गतिविधि को बढ़ावा देती है।
- ♣ फसल अवशेषों के ढ़काव (मल्चिंग) करके मिट्टी में नमी को बनाए रखती है एवं पानी (सिंचाई जल) की आवश्यकता को कम करती है।

ISSN: 3049-2211

किसानों के लिए स्थिरता:

- बाहरी और रासायनिक आदानों (इनपुट) पर निर्भरता कम रहती है।
- खेतों को लंबे समय तक टिकाऊ और उत्पादक बनाए रखने में मदद करता है।

प्राकृतिक खेती का माडल

यह एक मुक्त कृषि पद्दति है जो स्थानीय संसाधनों और पारंपरिक प्रथाओं पर आधारित है। इस माडल में, रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का उपयोग नहीं होता, बल्कि देशी गाय के गोबर और गोमूत्र से बने जीवामृत, धनजीवामृत और बीजामृत जैसे जैविक उत्पादों का उपयोग होता है। इसमें बहु-फसली प्रणाली अपनाई जाती है, जिसमें फसल, पेड़ और पशुधन को एक साथ एकीकृत किया जाता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता, फसल की गुणवत्ता और उपज में वृद्धि होती है।

प्राकृतिक खेती के माडल का प्रमुख सिद्धान्त और अभ्यास:

- **रसायन-मुक्त:** रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का कोई उपयोग नहीं होता है।
- **स्थानीय संसाधनों पर आधारित:** मिट्टी को पोषण देने के लिए बीजामृत, जीवामृत और धनजीवामृत जैसे उत्पादों का उपयोग किया जाता है।
- **जैविक उर्वरक:** एक ही खेत में एक से अधिक फसलें उगाई जाती है (जैसे बहु-फसल और सह-फसल प्रणाली), जो प्राकृतिक विविधता और मिट्टी के स्वास्थ्य को बनायें रखती है।
- **विविधता:** एक ही खेत में एक से अधिक फसलें उगाई जाती है (जैसे बहु-फसल अंतःफसल और सह-फसल), जो प्राकृतिक विविधता और मिट्टी के स्वास्थ्य को बनायें रखती है।
- **मिट्टी का स्वास्थ्य:** जैविक (बायोमास) मल्चिंग और साल भर हरित आवरण बनाए रखने जैसी पद्दतियों से मिट्टी की उर्वरता और नमी को बनाए रखा जाता है।
- **लागत में कमी:** रासायनिक आदानों (इनपुट) पर निर्भरता खत्म होने से किसानों की लागत कम होती है।

प्राकृतिक खेती की विशेषतायें

प्राकृतिक खेती की मुख्य विशेषताओं में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग न करना, प्राकृतिक रूप से उपलब्ध तत्वों जैसे गोबर और गोमूत्र का उपयोग करना तथा मिट्टी की जुताई न करके मिट्टी की संरचना और उर्वरता को बनाए रखना शामिल है। यह एक कम लागत वाली और पर्यावरण के अनुकूल पद्दति है जो मिट्टी की सतह पर कार्बनिक पदार्थों के विघटन को प्रौत्साहित करके धीरे-धीरे पोषण बढ़ाती है। इसके अलावा, यह फसल विविधता को बढ़ावा देती है और कीटों/बीमारियों के नियंत्रण के लिए जीवामृत, धनजीवामृत और नीमास्त्र जैसे प्राकृतिक अर्क का उपयोग करती है। प्राकृतिक खेती की प्रमुख विशेषताएँ निम्न उल्लेखित है:

- **बाहरी आदान का अभाव:** प्राकृतिक खेती में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग नहीं किया जाता है और बाहरी किसी भी प्रकार के पोषक तत्व मिट्टी या पौधों को नहीं दिये जाते हैं।
- **कीट नियंत्रण:** रासायनिक कीटनाशकों के बजाय नीमास्त्र, ब्रह्मास्त्र, दशपर्णी अर्क जैसे प्राकृतिक अर्क का उपयोग किया जाता है।
- **मिट्टी की जुताई नहीं:** प्राकृतिक खेती में जुताई नहीं की जाती है, ताकि मिट्टी की संरचना और सूक्ष्मजीवों का नुकसान न पहुँचें।
- **कम लागत:** यह एक कम लागत वाली पद्दति है, क्योंकि किसानों को महंगे रासायनिक आदानों (इनपुट) खरीदने की आवश्यकता नहीं होती है।
- **फसल विविधता:** एकल फसल के बजाय बहु-फसल प्रणाली को प्रोत्याहित किया जाता है, जो पारिस्थितिकी तंत्र को संतुलित रखने में मदद करता है।
- **प्राकृतिक संतुलन:** यह प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र की तरह काम करती है, जहाँ मिट्टी की सतह पर कार्बनिक पदार्थों का विघटन होता है, जिससे धीरे-धीरे मिट्टी में पोषण को बढ़ता है।
- **बीजों का संरक्षण:** किसान अपनी पैदावार में से ही अगली फसल के लिए बीज सुरक्षित कर सकते हैं, जिससे बीज खरीदने की लागत भी बचती है।

प्राकृतिक खेती का भविष्य, चुनौतियां एवं समाधान

भविष्य: प्राकृतिक खेती का भविष्य उज्जवल है, क्योंकि यह दुनियां की बढ़ती आबादी को स्वस्थ्य एवं पौष्टिक भोजन उपलबध कराने, खाद्द सुरक्षा में सुधार लाने और जैवविविधता के संरक्षण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

पर्यावरणीय स्थिरता, जल संरक्षण और ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन को कम करना भी प्राकृतिक खेती में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करने के साथ-साथ जलवायु परिवर्तन से निपटने में भी मदद करती है। केन्द्र एवं राज्य सरकार भी **"राष्ट्रीय प्राकृतिक खेती मिशन"** जैसी योजनाओं के माध्यम से इसे बढ़ावा दे रही है।

चुनौतिया: प्राकृतिक खेती की मुख्य चुनौतियों के अंतर्गत अपार्याप्त प्राकृतिक आदानों (इनपुट) की उपलब्धता, कम उत्पादन और न्यूनत्तम आय, बाजार और प्रमाणन की कमी शामिल है। इसके अतिरिक्त ज्ञान और जागरूकता की कमी, सरकारी समर्थन का अभाव, आर्थिक जोखिम और फसल संरक्षण उद्योग से आर्थिक खतरे की बाधायें भी शामिल है।

समाधान:

- ✓ **वैज्ञानिक अनुसंधान:** प्रमुख फसलों की पैदावार पर गहन और कठोर वैज्ञानिक अनुसंधान की आवश्यकता है।
- ✓ **सरकारी नीतियां:** बाजार के विश्लेषण के आधार पर नीतियों का निर्माण, वजटीय प्रावधान और वर्तमान योजनाओं (जैसे एफ.पी.ओ. और एक जिला एक उत्पाद आदि) की एक ही दिशा में संरेखित करना महत्वपूर्ण है।
- ✓ **बाजार और प्रमाणन को बढ़ावा:** प्राकृतिक उत्पादों के लिए समर्पित आपूर्ति श्रृंखला और प्रमाणन प्रणालियों को विकसित करने की आवश्यकता है।
- ✓ **प्रशिक्षण और जागरूकता:** किसानों के लिए जागरुकता और क्षमता निर्माण कार्यक्रम का प्रशिक्षण आयोजित करने से वे प्राकृतिक खेती को प्रभावी ढ़ंग से अपना सकेंगे।

प्राकृतिक खेती के नुकसान

प्राकृतिक खेती से उत्पादित खाद्य पदार्थ ज्यादा महंगे होते हैं, क्योंकि किसानों को अपनी जमीन से उतना उत्पादन नहीं मिलता, जितना की पारंपरिक खेती से किसानों को मिलता है। उत्पादन लागत ज्यादा होती हैं, क्योंकि किसानों को अधिक संख्या में मजदूरों की जरूरत होती है। जैविक खाद पदार्थों का उत्पादन कम मात्रा मे होने के कारण विपणन और वितरण कुशल पूर्वक से नहीं होता है।

प्राकृतिक खेती को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य एवं लक्ष्य

- ❖ प्राकृतिक वानस्पतियों और जीवों का संरक्षण।
- ❖ मिट्टी के स्वास्थ्य, उर्वरता एवं मिट्टी के जैविक जीवन को बहाल करना।
- ❖ फसल उत्पादन में जैव विविधता बनाए रखना।
- ❖ भूमि और प्राकृतिक संसाधनों (प्रकाश, वायु, जल) का कुशल उपयोग करना।
- ❖ पोषक तत्वों का पुनर्चकरण और कीटों/बीमारियों के जैविक नियंत्रण के लिए मिट्टी में प्राकृतिक लाभकारी कीटों, जीवों व सूक्ष्मजीवों को बढ़ावा देना।
- ❖ पशुधन एकीकरण के लिए स्थानीय नस्लों को बढ़ावा देना।
- ❖ प्राकृतिक/स्थानीय संसाधन आधारित आदानों का उपयोग।
- ❖ कृषि उत्पादन की इनपुट लागत को कम करना।
- ❖ किसानों की अर्थव्यवस्था में सुधार करना।

निष्कर्ष

प्राकृतिक खेती रासायन आधारित खेती का एक टिकाऊ विकल्प है, जो मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार, लागत कम करने और जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलापन बढ़ाने जैसे कई लाभ प्रदान करती है। हालांकि, इसे सफल बनाने के लिए अनुसंधान, नीतिगत समर्थन और किसानों को प्रोत्साहन की आवश्यकता के साथ-साथ उनकी जागरूकता की जरूरत है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए तकनीकों को बेहतर बनाने, सहायक नीतियों को बढ़ावा देने और मुख्यधारा में इसे एकीकृत करने पर ध्यान केंद्रीत किया जाना चाहिए, ताकि एक अधिक टिकाऊ और न्यायसंगत खाद्द प्रणाली का निर्माण किया जा सके।

चुनौतियों से निपटने के लिए आवश्यक कदम

- ❖ **अनुसंधान और विकास:** नई तकनीकों को बेहतर बनाना।
- ❖ **नीतिगत समर्थन:** सरकारी सहायता और स्पष्ट दिशा-निर्देश प्रदान करना।
- ❖ **बाजार पहुँच:** प्राकृतिक उत्पादों के लिए बेहतर विपणन सहायता और प्रमाणन-प्रणाली स्थापित करना।
- ❖ **ज्ञान और कौशल विकास:** किसानों को प्रशिक्षण और ज्ञान प्रदान करना।
- ❖ **आर्थिक व्यवहार्यता:** प्राकृतिक खेती को आर्थिक रूप से व्यवहार्य बनाना ताकि किसान इसे अपना सके।

*****

कृषि छात्रों की पहल: प्लास्टिक बैग में वर्मी कम्पोस्ट

[1]**माजिद खान-** छात्र, बी.एससी. (ऑनर्स) कृषि, कृषि संकाय
[2]**डॉ. मोहम्मद वामिक-** सहायक प्राध्यापक
[3]**श्री अवधेश सिंह चैधरी-** विभागाध्यक्ष, कृषि संकाय
सरदार पटेल विश्वविद्यालय, डोंगरिया, बालाघाट

आज के समय में कृषि एवं कृषि क्षेत्र में अनेक प्रकार की कठिनाइयां एवं चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है एवं हरित क्रांति के बाद कृषि उत्पादन में तो उल्लेखनीय वृद्धि हुई, लेकिन रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और खरपतवारनाशकों के अत्यधिक एवं अनियंत्रित उपयोग से मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने लगा है। इसके कारण भूमि की जैविक गुणवत्ता में गिरावट, सूक्ष्म जीवों की संख्या में कमी तथा मृदा संरचना में असंतुलन जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। परिणामस्वरूप फसलों की उत्पादकता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है और किसानों की उत्पादन लागत लगातार बढ़ती जा रही है। ऐसी परिस्थितियों में कृषि को टिकाऊ और पर्यावरण के अनुकूल बनाने के लिए जैविक खेती को बढ़ावा देना अत्यंत आवश्यक हो गया है। जैविक खेती में प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर भूमि की उर्वरता को बनाए रखने और फसलों की गुणवत्ता को सुधारने का प्रयास किया जाता है। इसी क्रम में वर्मी कम्पोस्ट का विशेष महत्व है। वर्मी कम्पोस्ट एक उच्च गुणवत्ता वाली जैविक खाद है, जो केंचुओं की सहायता से जैविक अपशिष्ट पदार्थों को विघटित करके तैयार की जाती है। यह मिट्टी को प्राकृतिक रूप से आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करने के साथ-साथ उसकी संरचना, जलधारण क्षमता तथा जैविक गतिविधियों को भी बेहतर बनाती है। इसी दिशा में सरदार पटेल विश्वविद्यालय बालाघाट के कृषि संकाय के छात्रों द्वारा एक सराहनीय और प्रेरणादायक पहल की गई है। छात्रों ने सीमित संसाधनों और कम स्थान में प्लास्टिक बैग का उपयोग करते हुए वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने की एक सरल एवं प्रभावी तकनीक का प्रदर्शन किया है। यह पहल न केवल छात्रों के व्यावहारिक ज्ञान और नवाचार को दर्शाती है, बल्कि किसानों और आम लोगों के लिए भी एक उपयोगी उदाहरण प्रस्तुत करती है। प्लास्टिक बैग आधारित वर्मी कम्पोस्ट तकनीक कम लागत, कम स्थान और सरल विधि के कारण छोटे

ISSN: 3049-2211

किसानों, ग्रामीण परिवारों तथा शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए भी अत्यंत उपयोगी साबित हो सकती है। इसके माध्यम से जैविक कचरे का उचित उपयोग करते हुए उच्च गुणवत्ता वाली जैविक खाद तैयार की जा सकती है, जिससे टिकाऊ और पर्यावरण-अनुकूल कृषि को बढ़ावा मिलता है।

वर्मी कम्पोस्ट का महत्व

वर्मी कम्पोस्ट एक उच्च गुणवत्ता वाली जैविक खाद है, जो केंचुओं की सहायता से जैविक अपशिष्ट पदार्थों जैसे गोबर, सूखी पत्तियाँ, फसल अवशेष तथा अन्य जैविक कचरे को विघटित करके तैयार की जाती है। यह प्राकृतिक प्रक्रिया के माध्यम से बनने वाली खाद है, जो मिट्टी के लिए अत्यंत लाभकारी मानी जाती है। वर्मी कम्पोस्ट मिट्टी की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके उपयोग से मिट्टी की संरचना बेहतर होती है, जिससे मिट्टी में हवा और पानी का संचलन सुचारु रूप से होता है। वर्मी कम्पोस्ट में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश के साथ-साथ कई सूक्ष्म पोषक तत्व भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं, जो पौधों की स्वस्थ वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक होते हैं। इसके प्रयोग से मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ती है, जिससे पौधों को लंबे समय तक नमी उपलब्ध रहती है और सूखे की स्थिति में भी फसल को कम नुकसान होता है। साथ ही यह पौधों की जड़ों के विकास को प्रोत्साहित करता है, जिससे पौधे अधिक मजबूत और स्वस्थ बनते हैं वर्मी कम्पोस्ट के नियमित उपयोग से फसलों की वृद्धि तेज होती है और उनकी गुणवत्ता में भी सुधार होता है। फल, सब्जियों और अनाज की उपज अधिक पौष्टिक और स्वादिष्ट होती है। इसके अतिरिक्त वर्मी कम्पोस्ट मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या को बढ़ाता है, जो पोषक तत्वों के अवशोषण में सहायक होते हैं। यह पर्यावरण के अनुकूल होने के कारण रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता को कम करता है और दीर्घकालीन रूप से मृदा की उर्वरता को बनाए रखने में मदद करता है। इस प्रकार वर्मी कम्पोस्ट सतत एवं पर्यावरण-अनुकूल कृषि प्रणाली को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

आवश्यक सामग्री

प्लास्टिक बैग में वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने के लिए कुछ आवश्यक सामग्रियों की आवश्यकता होती है। इसमें मजबूत और बड़े आकार के प्लास्टिक बैग, गोबर या गोबर से बना हुआ आंशिक रूप से सड़ा हुआ पदार्थ, सूखी पत्तियाँ, फसल अवशेष, रसोई का जैविक कचरा तथा उपयुक्त प्रजाति आइसेनिया फेटिडा के केंचुए शामिल होते हैं। इसके अतिरिक्त नमी बनाए रखने के लिए पानी की भी आवश्यकता होती है। इन सभी सामग्रियों की उपलब्धता सामान्यतः गांवों और खेतों में आसानी से हो जाती है, इसलिए इस तकनीक को कम लागत में आसानी से अपनाया जा सकता है।

वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने की विधि

सबसे पहले एक मजबूत प्लास्टिक बैग लिया जाता है और उसमें नीचे की ओर छोटे-छोटे छेद कर दिए जाते हैं ताकि अतिरिक्त पानी बाहर निकल सके। इसके बाद बैग में सूखी पत्तियाँ या भूसा की एक परत बिछाई जाती है। इसके ऊपर गोबर, फसल अवशेष और अन्य जैविक कचरे की परत डाली जाती है। जब यह परतें अच्छी तरह व्यवस्थित हो जाती हैं, तब उसमें केंचुए छोड़े जाते हैं। इसके बाद बैग को छायादार स्थान पर रखा जाता है और नमी बनाए रखने के लिए समय-समय पर हल्का पानी छिड़का जाता है। लगभग 40 से 50 दिनों के भीतर केंचुए इन जैविक पदार्थों को विघटित कर पोषक तत्वों से भरपूर वर्मी कम्पोस्ट में परिवर्तित कर देते हैं।

प्लास्टिक बैग आधारित वर्मी कम्पोस्ट यूनिट

सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट के कृषि संकाय के छात्रों ने सीमित संसाधनों का प्रभावी उपयोग करते हुए प्लास्टिक बैग में वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने की एक सरल एवं उपयोगी तकनीक का प्रदर्शन किया। इस तकनीक का उद्देश्य यह दिखाना है कि कम लागत और कम स्थान में भी जैविक खाद का उत्पादन सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इस विधि में मजबूत और बड़े आकार के प्लास्टिक बैग का उपयोग किया जाता है, जो वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने के लिए एक अस्थायी लेकिन प्रभावी यूनिट का कार्य करते हैं।इस प्रक्रिया में सबसे पहले प्लास्टिक बैग

में गोबर, सूखी पत्तियाँ, फसल अवशेष तथा अन्य जैविक अपशिष्ट पदार्थों को परतों के रूप में व्यवस्थित किया जाता है। इन जैविक पदार्थों को हल्का नम रखा जाता है ताकि विघटन की प्रक्रिया सुचारु रूप से चल सके। इसके बाद इसमें वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए उपयुक्त प्रजाति के केंचुए आइसेनिया फेटिडा छोड़े जाते हैं, जो जैविक पदार्थों को तेजी से विघटित करने के लिए प्रसिद्ध माने जाते हैं।केंचुओं की सक्रियता बनाए रखने के लिए यूनिट में उचित नमी और तापमान का ध्यान रखा जाता है तथा समय-समय पर हल्का पानी छिड़का जाता है। अनुकूल परिस्थितियों में लगभग 40 से 50 दिनों के भीतर केंचुए इन जैविक पदार्थों को विघटित कर पौष्टिक एवं उच्च गुणवत्ता वाली वर्मी कम्पोस्ट में परिवर्तित कर देते हैं। तैयार वर्मी कम्पोस्ट पौधों के लिए अत्यंत लाभकारी होती है और मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

यह तकनीक विशेष रूप से उन किसानों, छात्रों और शहरी लोगों के लिए उपयोगी है जिनके पास सीमित स्थान उपलब्ध है। प्लास्टिक बैग आधारित वर्मी कम्पोस्ट यूनिट को खेत, घर के आंगन या छोटे स्थानों पर भी आसानी से स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार यह विधि कम संसाधनों में जैविक खाद उत्पादन का एक सरल, सस्ता और प्रभावी विकल्प प्रदान करती है।

छात्रों की भूमिका और उद्देश्य

कृषि संकाय के छात्रों की इस पहल का मुख्य उद्देश्य किसानों और आम नागरिकों को जैविक खाद निर्माण की सरल एवं कम लागत वाली तकनीक से परिचित कराना है। इस कार्य के माध्यम से छात्रों ने न केवल अपने शैक्षणिक ज्ञान को व्यवहारिक रूप में लागू किया, बल्कि समाज के लिए भी एक उपयोगी उदाहरण प्रस्तुत किया। छात्रों ने इस तकनीक के माध्यम से यह दिखाया कि कम संसाधनों और सीमित स्थान में भी वर्मी कम्पोस्ट का उत्पादन सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इससे छात्रों को व्यावहारिक अनुभव प्राप्त हुआ और किसानों के बीच जागरूकता बढ़ाने में भी सहायता मिली।

लाभ

- **कम लागत में स्थापना:** प्लास्टिक बैग आधारित वर्मी कम्पोस्ट यूनिट को बहुत कम लागत में स्थापित किया जा सकता है, जिससे छोटे और सीमांत किसान भी इसे आसानी से अपना सकते हैं।
- **कम स्थान की आवश्यकता:** इस विधि के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता नहीं होती। इसे घर के आंगन, खेत के किसी कोने या छोटे स्थान में भी आसानी से स्थापित किया जा सकता है।
- **जैविक कचरे का सदुपयोग:** इस तकनीक के माध्यम से गोबर, सूखी पत्तियाँ, फसल अवशेष तथा अन्य जैविक अपशिष्ट पदार्थों का प्रभावी उपयोग किया जा सकता है।
- **मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि:** वर्मी कम्पोस्ट के प्रयोग से मिट्टी में आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है तथा मृदा की संरचना में सुधार होता है।
- **फसलों की वृद्धि और गुणवत्ता में सुधार:** इस जैविक खाद के उपयोग से पौधों की वृद्धि बेहतर होती है और फसलों की गुणवत्ता तथा उत्पादन में भी वृद्धि होती है।
- **पर्यावरण संरक्षण:** वर्मी कम्पोस्ट के उपयोग से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है, जिससे पर्यावरण को सुरक्षित रखने में सहायता मिलती है।
- **जैविक खेती को बढ़ावा:** यह तकनीक किसानों को जैविक खेती अपनाने के लिए प्रेरित करती है और टिकाऊ कृषि प्रणाली को बढ़ावा देती है।

निष्कर्ष

सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट के कृषि संकाय के छात्रों द्वारा प्लास्टिक बैग में तैयार किया गया वर्मी कम्पोस्ट एक अभिनव, सरल एवं किफायती तकनीक का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह पहल दर्शाती है कि सीमित संसाधनों में भी प्रभावी तरीके से जैविक खाद तैयार की जा सकती है। इस प्रकार की गतिविधियाँ छात्रों को सैद्धांतिक ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक अनुभव प्रदान करती हैं, जिससे उनके कौशल, नवाचार क्षमता और कृषि के प्रति समझ में वृद्धि होती है साथ ही यह प्रयास किसानों को भी जैविक खेती अपनाने के लिए प्रेरित करता है, क्योंकि प्लास्टिक बैग आधारित वर्मी कम्पोस्ट यूनिट कम लागत, कम स्थान और कम संसाधनों में आसानी से स्थापित की जा सकती है। इससे किसानों को गुणवत्तापूर्ण जैविक खाद उपलब्ध होती है, जो मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने, सूक्ष्म जीवों की सक्रियता को बनाए रखने तथा रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग को कम करने में सहायक होती है। भविष्य में यदि इस तकनीक को कृषि विस्तार कार्यक्रमों, प्रशिक्षण शिविरों और जागरूकता अभियानों के माध्यम से व्यापक स्तर पर किसानों तक पहुँचाया जाए, तो यह न केवल कृषि उत्पादन की गुणवत्ता और उत्पादकता में सुधार करेगा, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, मृदा स्वास्थ्य संवर्धन और टिकाऊ कृषि प्रणाली को मजबूत बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

♣♣♣

नींबू वर्गीय फसलों में लेमन बटरफ्लाई का समेकित कीट प्रबंधन एक व्यावहारिक दृष्टिकोण

संदीप- पी.एच.डी. शोधार्थी, कीट विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर, बिहार
ओंकार यादव- एम.एस.सी., फल एवं फल प्रौद्योगिकी विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर, बिहार

नींबू वर्गीय फसलें भारतीय बागवानी में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन फसलों को प्रभावित करने वाले प्रमुख कीटों में लेमन बटरफ्लाई (*Papilio demoleus* L.) का नाम सबसे पहले आता है। यह कीट Lepidoptera गण के Papilionidae कुल से संबंधित है और भारत के लगभग सभी नींबू उत्पादक क्षेत्रों में पाया जाता है। इसकी इल्ली अवस्था सर्वाधिक हानिकारक होती है जो पौधों की कोमल पत्तियों और नई टहनियों को खाकर नष्ट कर देती है। नर्सरी अवस्था में भारी प्रकोप होने पर 50 से 70 प्रतिशत तक पौध नष्ट हो सकती है। प्रस्तुत लेख में लेमन बटरफ्लाई के जीवन चक्र, क्षति के लक्षण, आर्थिक क्षति स्तर तथा समेकित कीट प्रबंधन (IPM) की विभिन्न विधियों का विस्तृत विवरण दिया गया है। IPM के अंतर्गत सस्य क्रियाओं, यांत्रिक, जैविक, वानस्पतिक एवं रासायनिक विधियों के समन्वित उपयोग पर जोर दिया गया है। जैविक नियंत्रण में *Trichogramma* spp. एवं *Bacillus thuringiensis* (Bt) की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके साथ ही मौसमवार IPM कैलेंडर एवं निगरानी विधियों का भी उल्लेख किया गया है। IPM अपनाने से रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग में 40 से 60 प्रतिशत तक कमी लाई जा सकती है, जिससे उत्पादन लागत घटती है, फल की गुणवत्ता बढ़ती है और पर्यावरण सुरक्षित रहता है। यह लेख किसानों, कृषि विद्यार्थियों एवं विस्तार कार्यकर्ताओं के लिए एक व्यावहारिक मार्गदर्शिका के रूप में उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रस्तावना

भारत में नींबू वर्गीय फसलें जैसे नींबू, संतरा, मौसमी और किन्नू किसानों की आमदनी का एक महत्वपूर्ण जरिया हैं। इन फसलों की खेती देश के कई राज्यों में बड़े पैमाने पर की जाती है। लेकिन इन फसलों को कई प्रकार के कीटों से खतरा रहता है, जिनमें से एक प्रमुख कीट है लेमन बटरफ्लाई जिसे वैज्ञानिक भाषा में *Papilio demoleus* कहते हैं। यह कीट देखने में एक सुंदर तितली लगती है, लेकिन इसकी इल्ली अवस्था नींबू वर्गीय पौधों के लिए अत्यंत हानिकारक होती है। इसकी इल्लियाँ पौधों की कोमल पत्तियों और नई टहनियों को चट कर जाती हैं, जिससे विशेष रूप से नर्सरी और छोटे पौधों को भारी नुकसान होता है। यदि समय रहते इस कीट पर ध्यान न दिया जाए तो यह पूरी फसल को बर्बाद कर सकता है।

पारंपरिक खेती में किसान इस कीट से निपटने के लिए केवल रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भर रहते थे। इससे न केवल उत्पादन लागत

ISSN: 3049-2211

बढ़ती थी, बल्कि पर्यावरण, मिट्टी और मानव स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता था। इसी समस्या के समाधान के रूप में समेकित कीट प्रबंधन (Integrated Pest Management-IPM) की अवधारणा सामने आई।

(क्षति के लक्षण)

IPM एक ऐसी वैज्ञानिक पद्धति है जिसमें कीट नियंत्रण के लिए सस्य क्रियाओं, जैविक, यांत्रिक और रासायनिक विधियों का एक साथ संतुलित उपयोग किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य कीट की संख्या को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रखना है, न कि उसे पूरी तरह नष्ट करना। इस लेख में हम लेमन बटरफ्लाई के जीवन चक्र, क्षति के लक्षण और उसके समेकित प्रबंधन के बारे में विस्तार से जानेंगे।

लेमन बटरफ्लाई का परिचय एवं जीवन चक्र

लेमन बटरफ्लाई का वैज्ञानिक नाम *Papilio demoleus* है। यह Lepidoptera गण और Papilionidae कुल से संबंधित है। इसे सामान्य भाषा में "नींबू तितली" या "लाइम बटरफ्लाई" भी कहते हैं। यह कीट भारत के लगभग सभी नींबू उत्पादक राज्यों जैसे महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में पाया जाता है। इसके प्रमुख पोषक पौधों में नींबू, संतरा, मौसमी, किन्नू, करी पत्ता और बेल शामिल हैं।

जीवन चक्र

लेमन बटरफ्लाई का जीवन चक्र चार अवस्थाओं में पूरा होता है:

1. अंडा अवस्था: मादा तितली नींबू वर्गीय पौधों की कोमल पत्तियों की ऊपरी सतह पर एक-एक करके गोल, पीले रंग के अंडे देती है। अंडे लगभग 3 से 5 दिनों में फूटते हैं।

2. लार्वा (इल्ली) अवस्था: यह अवस्था सबसे अधिक हानिकारक होती है। इल्ली शुरू में काले और सफेद रंग की होती है जो पक्षी की विष्ठा जैसी दिखती है, यह एक प्राकृतिक छलावरण है। बाद की अवस्थाओं में यह हरे रंग की हो जाती है। इल्ली अवस्था 5 इन्स्टार में पूरी होती है और लगभग 15 से 20 दिन तक चलती है। इसी दौरान यह पत्तियों को सबसे अधिक नुकसान पहुँचाती है।

3. प्यूपा अवस्था: पूर्ण विकसित इल्ली पौधे की टहनी या पत्ती पर प्यूपा बनाती है। प्यूपा हरे या भूरे रंग का होता है और यह अवस्था लगभग 7 से 10 दिनों तक रहती है।

4. वयस्क तितली: प्यूपा से वयस्क तितली निकलती है जो पीले-काले रंग की होती है और उसके पंखों पर सुंदर धब्बे होते हैं। वयस्क तितली का मुख्य कार्य प्रजनन करना होता है। एक वर्ष में इस कीट की 4 से 6 पीढ़ियाँ पूरी हो सकती हैं।

क्षति के लक्षण एवं आर्थिक महत्व

क्षति के लक्षण

लेमन बटरफ्लाई से होने वाली अधिकांश क्षति इसकी इल्ली अवस्था में होती है। वयस्क तितली फसल को कोई नुकसान नहीं पहुँचाती, लेकिन इसकी इल्लियाँ पौधों को बुरी तरह प्रभावित करती हैं। क्षति के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं:

पत्तियों पर असर: छोटी इल्लियाँ पत्तियों की ऊपरी सतह को खुरचकर खाती हैं, जिससे पत्तियों पर अनियमित आकार के हल्के धब्बे दिखाई देते हैं। बड़ी इल्लियाँ पत्तियों को किनारों से खाना शुरू करती हैं और कभी-कभी पूरी पत्ती को साफ कर देती हैं, केवल मध्य शिरा (midrib) बचती है।

कोमल टहनियों पर असर: नई और कोमल टहनियों को भी इल्लियाँ खा जाती हैं, जिससे पौधे की बढ़वार रुक जाती है और वह कमजोर पड़ने लगता है।

नर्सरी पर प्रभाव: नर्सरी में छोटे और नए पौधों पर इस कीट का प्रकोप सबसे अधिक घातक होता है। एक या दो इल्लियाँ ही एक छोटे पौधे को पूरी तरह पत्तीविहीन कर सकती हैं, जिससे पौधा सूख सकता है।

आर्थिक महत्व

यह कीट आर्थिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। नर्सरी अवस्था में भारी प्रकोप होने पर 50 से 70 प्रतिशत तक पौध नष्ट हो सकती है। बड़े बागों में भले ही नुकसान उतना गंभीर न हो, लेकिन नई फ्लश (flush) के समय यदि इल्लियों की संख्या अधिक हो तो उत्पादन पर सीधा असर पड़ता है।

आर्थिक क्षति स्तर (Economic Threshold Level-ETL): जब किसी पौधे पर प्रति शाखा 1 से 2 इल्लियाँ दिखाई दें तो इसे आर्थिक क्षति स्तर माना जाता है और तुरंत नियंत्रण के उपाय अपनाने चाहिए। ETL से पहले ही निगरानी और जैविक उपाय शुरू कर देने से रासायनिक कीटनाशकों की जरूरत काफी कम हो जाती है।

समेकित कीट प्रबंधन (IPM Strategies)

समेकित कीट प्रबंधन में केवल एक विधि पर निर्भर न रहकर कई विधियों को मिलाकर अपनाया जाता है। इससे कीट नियंत्रण प्रभावी होता है और पर्यावरण को नुकसान भी कम होता है।

सस्य क्रियाएँ (Cultural Methods)

सस्य क्रियाएँ IPM की नींव होती हैं। इनके अंतर्गत निम्न उपाय अपनाए जाते हैं:

- बाग की नियमित सफाई करें और गिरी हुई पत्तियों व टहनियों को हटाएँ जिन पर प्यूपा छिपे हो सकते हैं।
- स्वस्थ और प्रमाणित पौध का ही रोपण करें।
- नींबू के बाग के पास करी पत्ता और बेल जैसे वैकल्पिक पोषक पौधे न लगाएँ क्योंकि ये इस कीट को आकर्षित करते हैं।
- नई पत्तियां आने के समय बाग की नियमित निगरानी रखें क्योंकि इसी दौरान मादा तितली अंडे देती है।

यांत्रिक एवं भौतिक विधियाँ (Mechanical & Physical Methods)

ये विधियाँ सरल, सस्ती और पर्यावरण के अनुकूल होती हैं:

- पत्तियों पर दिखाई देने वाले अंडों को हाथ से इकट्ठा कर नष्ट करें।
- छोटी इल्लियों को हाथ से चुनकर मिट्टी के तेल मिले पानी में डालकर नष्ट करें।
- नर्सरी में पौधों को महीन जाल (netting) से ढककर तितली को अंडे देने से रोका जा सकता है।
- छोटे पौधों पर तेज पानी की धार मारने से अंडे और छोटी सूँडियाँ जमीन पर गिर जाती हैं, जहाँ वे चींटियों या अन्य शिकारियों का भोजन बन जाती हैं।

जैविक नियंत्रण (Biological Control)

जैविक नियंत्रण IPM का सबसे महत्वपूर्ण और टिकाऊ स्तंभ है:

- ***Trichogramma* spp.:** यह एक अंडा परजीवी कीट है जो लेमन बटरफ्लाई के अंडों के अंदर अपने अंडे देकर उन्हें नष्ट कर देता है। इसे बाग में 50,000 परजीवी प्रति हेक्टेयर की दर से छोड़ा जाता है।
- ***Apanteles* spp.:** यह ततैया इल्ली के शरीर के अंदर अपने अंडे देती है और उसके भीतर विकसित होकर इल्ली को नष्ट कर देती है। इसे 10,000 परजीवी प्रति हेक्टेयर की दर से छोड़ा जाता है।
- ***Bracon* spp.:** यह भी एक लार्वा परजीवी ततैया है जो इल्ली को बाहर से डंक मारकर पक्षाघात (paralysis) कर देती है और फिर उस पर अपने अंडे देती है। उपयोग दर 10,000 परजीवी प्रति हेक्टेयर।
- ***Bacillus thuringiensis* (Bt):** यह एक जीवाणु आधारित जैव कीटनाशक है। इसका छिड़काव छोटी इल्लियों पर बहुत प्रभावी होता है। Bt को 1.0 से 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- प्राकृतिक परभक्षी जैसे मकड़ियाँ, परजीवी ततैया और कुछ पक्षी भी इल्लियों की संख्या को स्वाभाविक रूप से नियंत्रित रखते हैं। इसलिए बाग में अनावश्यक कीटनाशकों का उपयोग न करें ताकि ये मित्र कीट सुरक्षित रहें।

वानस्पतिक विधियाँ (Botanical Methods)

रासायनिक कीटनाशकों के विकल्प के रूप में वानस्पतिक उत्पाद बहुत उपयोगी हैं -

- **नीम तेल (Neem Oil):** 5 मिली नीम तेल प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से इल्लियों की भूख कम होती है और उनका विकास रुकता है।
- **नीम आधारित कीटनाशक (NSKE 5%):** नीम बीज सत का 5 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करें। यह अंडों के फूटने की दर को भी कम करता है।
- **लहसुन-मिर्च अर्क:** 100 ग्राम लहसुन और 50 ग्राम हरी मिर्च को पीसकर 10 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से भी इल्लियाँ पौधों से दूर रहती हैं।

रासायनिक नियंत्रण (Chemical Control)

रासायनिक विधि को सबसे अंत में और केवल तभी अपनाएँ जब कीट की संख्या ETL से अधिक हो जाए:

कीटनाशक	मात्रा (प्रति लीटर पानी)	छिड़काव का समय
क्लोरपायरीफॉस 20 EC	2.0 मिली	इल्ली दिखते ही
क्विनॉलफॉस 25 EC	2.0 मिली	नई फ्लश पर
स्पिनोसेड 45 SC	0.3 मिली	जैविक विकल्प के रूप में
लैम्ब्डा-सायहेलोथ्रिन 5 EC	1.0 मिली	भारी प्रकोप में

ध्यान रखें:

- एक ही कीटनाशक को बार-बार उपयोग न करें, इससे कीट में प्रतिरोधकता (resistance) विकसित होती है।
- छिड़काव सुबह या शाम के समय करें।
- फल तोड़ने से कम से कम 15 दिन पहले रासायनिक छिड़काव बंद कर दें।

निगरानी एवं IPM कैलेंडर

निगरानी एवं पूर्वानुमान

किसी भी कीट के प्रभावी प्रबंधन के लिए सबसे पहली और जरूरी कदम है नियमित निगरानी। बिना निगरानी के न तो सही समय पर कीट का पता चलता है और न ही उचित उपाय किए जा सकते हैं।

निगरानी के व्यावहारिक तरीके:

- प्रत्येक 7 से 10 दिनों में बाग का भ्रमण करें और पौधों की पत्तियों, कोमल टहनियों तथा नई फ्लश की जाँच करें।
- बाग के चारों कोनों और बीच में कम से कम 5 पौधों का नमूना लेकर प्रति पौधा 10 शाखाओं की जाँच करें।
- जब प्रति शाखा 1 से 2 इल्लियाँ दिखाई दें तो तुरंत नियंत्रण उपाय शुरू करें।
- फेरोमोन ट्रैप लगाने से वयस्क तितलियों की सक्रियता का पता लगाया जा सकता है जिससे अंडे देने का समय पहले से अनुमानित किया जा सके।
- नर्सरी में प्रतिदिन निगरानी आवश्यक है क्योंकि वहाँ नुकसान बहुत तेजी से होता है।

IPM कैलेंडर (Seasonal IPM Calendar)

नीचे दी गई तालिका में मौसम के अनुसार किए जाने वाले प्रबंधन कार्यों का विवरण है:

माह	फसल अवस्था	प्रमुख कार्य
जनवरी-फरवरी	सुषुप्त अवस्था	बाग की सफाई, सूखी टहनियों की छंटाई, प्यूपा नष्ट करें
मार्च-अप्रैल	नई फ्लश व फूल	निगरानी शुरू करें, Trichogramma छोड़ें, नीम तेल छिड़काव
मई-जून	फल विकास	इल्लियाँ हाथ से चुनें, Bt का छिड़काव करें
जुलाई-अगस्त	वर्षा ऋतु	जल निकासी सुनिश्चित करें, भारी प्रकोप में रासायनिक छिड़काव
सितंबर-अक्टूबर	दूसरी फ्लश	पुनः निगरानी, जैविक नियंत्रण उपाय अपनाएँ
नवंबर-दिसंबर	फल तुड़ाई	रासायनिक छिड़काव बंद करें, बाग की सफाई करें

निष्कर्ष एवं सिफारिशें

लेमन बटरफ्लाई (*Papilio demoleus*) नींबू वर्गीय फसलों का एक प्रमुख कीट है जो विशेष रूप से इल्ली अवस्था में पौधों को भारी नुकसान पहुँचाता है। इसके प्रभावी प्रबंधन के लिए समेकित कीट प्रबंधन (IPM) सबसे वैज्ञानिक और टिकाऊ तरीका है। IPM में सस्य क्रियाओं, यांत्रिक, जैविक, वानस्पतिक और रासायनिक विधियों का संतुलित उपयोग करके कीट की संख्या को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रखा जा सकता है। *Trichogramma*, *Apanteles*, *Bracon*, *Pteromalus puparum* जैसे परजीवी कीटों और *Bacillus thuringiensis* जैसे जैव कीटनाशकों का उपयोग न केवल प्रभावी है बल्कि पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य के लिए भी सुरक्षित है।

किसान भाइयों को सलाह दी जाती है कि वे नर्सरी और बाग में नियमित निगरानी करें, ETL के आधार पर नियंत्रण उपाय अपनाएँ और रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग केवल अंतिम विकल्प के रूप में करें। IPM अपनाने से उत्पादन लागत में 40 से 60 प्रतिशत तक कमी आती है, फल की गुणवत्ता और बाजार मूल्य बढ़ता है तथा मिट्टी एवं पर्यावरण भी सुरक्षित रहता है। अधिक जानकारी के लिए किसान अपने नजदीकी कृषि विज्ञान केंद्र (KVK) या कृषि विभाग से संपर्क करें।

♣♣♣

कृषि में मौसम कारकों का महत्व

राजन चौधरी- विषय वस्तु विशेषज्ञ
दीपक राय- वरिष्ठ वैज्ञानिक सह अध्यक्ष
ओम प्रकाश कांटवा एवं **गव्हाणे किशोर पांडुरंग-** विषय वस्तु विशेषज्ञ
कृषि विज्ञान केन्द्र, खूंटी
भा०कृ०अनु०प०- रा०कृ०उ०प्र० संस्थान, नामकुम, राँची, झारखण्ड

कृषि मानव जीवन के लिए अनिवार्य है- खाद्य उत्पादन, कच्चे माल की उपलब्धता और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में इसकी भूमिका अतुलनीय है। भारत में अधिकांश फसलें मौसम पर निर्भर होती हैं। खरीफ फसलें मानसून की बारिश पर, जबकि रबी फसलें सर्दियों के तापमान पर निर्भर करती हैं। उचित तापमान और वर्षा फसल के अंकुरण, वृद्धि, फूल आने और दाना भरने में सहायक होती है। धूप और आर्द्रता फसल की गुणवत्ता और रोग-प्रतिरोधक क्षमता को प्रभावित करती हैं। यदि मौसम अनुकूल हो, तो उपज बढ़ सकती है, लेकिन यदि मौसम अत्यधिक हो (जैसे सूखा, ओलावृष्टि, अनियमित वर्षा, आंधी, तापमान कटाव आदि), तो फसलें क्षति या पूरी तरह नष्ट हो सकती हैं। मौसम कारक- जैसे: तापमान, वर्षा, आर्द्रता, हवा, विकिरण (सौर विकिरण), वाष्पोत्सर्जन आदि; कृषि निर्णयों की बुनियाद होते हैं। यदि किसान इन कारकों को सही समय पर जानें और उनका उपयोग कर सकें, तो खेती की कार्य योजना (जैसे बुवाई, सिंचाई, फसल प्रबंध, कटाई आदि) को अनुकूल किया जा सकता है।

खरीफ मौसम में मौसम कारकों का फसल, सब्जी एवं पशुपालन पर प्रभाव

भारत में कृषि मुख्यतः मौसम पर आधारित है। खरीफ मौसम, जो आमतौर पर जून से अक्टूबर तक होता है, वर्षा ऋतु के साथ जुड़ा होता है। इस मौसम में तापमान अधिक, आर्द्रता अधिक और वर्षा की मात्रा भी अधिक होती है। खरीफ मौसम के दौरान मौसम कारक जैसे वर्षा, तापमान, आर्द्रता (नमी), एवं हवा का कृषि प्रणाली के विभिन्न घटकों जैसे फसल, सब्जी और पशुपालन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

फसलों पर प्रभाव:

खरीफ के मौसम में बोई जाने वाली प्रमुख फसलें हैं – धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, कपास, मूंगफली, सोयाबीन आदि। इन फसलों के लिए मानसून की बारिश बहुत आवश्यक होती है।

- **वर्षा:** खरीफ फसलें वर्षा पर निर्भर होती हैं। मध्यम व नियमित वर्षा फसलों की वृद्धि के लिए अनुकूल होती है, परंतु अत्यधिक वर्षा जलभराव का कारण बनती है जिससे फसलों की जड़ें सड़ने लगती हैं। उदाहरणस्वरूप, धान की खेती में पानी की आवश्यकता होती है, लेकिन अत्यधिक पानी ब्लास्ट व शीथ ब्लाइट जैसे रोगों को जन्म देता है।
- **तापमान:** इस मौसम में सामान्य तापमान 25° सेंटीग्रेट से 35° सेंटीग्रेट तक होता है जो कि फसलों की वृद्धि के लिए अनुकूल है। परंतु असामान्य रूप से उच्च तापमान (गर्मी की लहर) फूलने और दाने भरने की प्रक्रिया को बाधित करता है, जिससे उपज में कमी आती है।
- **नमी:** मिट्टी और वातावरण की नमी पौधों के लिए आवश्यक होती है, लेकिन अत्यधिक नमी बीमारियों जैसे पत्ती झुलसा, जड़ सड़न, और कीट प्रकोप (जैसे तना छेदक) को बढ़ावा देती है।

तालिका-1: कृषि से जुड़े मौसम कारक का फसल उत्पादन पर प्रभाव

मौसम कारक	अनुकूल प्रभाव (फसल उत्पादन पर)	प्रतिकूल असर (फसल उत्पादन पर)
तापमान	बीज अंकुरण, फूल आने व दाना भरने के लिए उपयुक्त (धान: 25–30° सेंटीग्रेट, गेहूँ: 15–20° सेंटीग्रेट)	अत्यधिक प्रभाव (>35°सेंटीग्रेट) पर फूल झड़ना, ठंड/पाला से सब्ज़ियाँ और बागवानी फसलें नष्ट
वर्षा/वृष्टि	खरीफ फसलों (धान, मक्का) की वृद्धि, नमी उपलब्धता	वर्षा की कमी: सूखा; अधिक वर्षा: जलभराव, जड़ सड़न, रोग फैलाव
आर्द्रता	मध्यम आर्द्रता में दलहन व तिलहन फसलें अच्छी	अधिक आर्द्रता (>80%) पर फफूंदजन्य रोग (धान में ब्लास्ट, आलू में झुलसा)
धूप/सौर विकिरण	प्रकाश संश्लेषण व दाना भरने में सहायक (गेहूँ, आलू)	धूप की कमी से उपज घटती, लगातार बादल से रोग बढ़ते
हवा/पवन	हल्की हवा परागण में सहायक (मक्का, सूरजमुखी)	तेज़ हवा से पौधे गिरना (lodging), फल-फूल झड़ना
वायुदाब	सामान्य वायुदाब पर स्थिर मौसम, फसल सुरक्षित	कम वायुदाब पर चक्रवात, तूफ़ान और भारी वर्षा से नुकसान
वाष्पोत्सर्जन	वाष्पोत्सर्जन के आधार पर जल प्रबंधन	अधिक वाष्पोत्सर्जन से फसल मुरझाना एवं अधिक पानी की आवश्यकता
ओस	रबी फसलों (गेहूँ, चना, मटर) को अतिरिक्त नमी	—
पाला	—	सब्ज़ियों व बागवानी फसलों (आलू, टमाटर, पपीता) को हानि
प्राकृतिक आपदाएँ (सूखा, बाढ़, ओलावृष्टि, लू, शीत लहर)	—	सूखा, बाढ़, ओलावृष्टि, लू, ठंडी लहर से उत्पादन भारी प्रभावित

- **हवा:** खरीफ मौसम में तेज हवाएं या तूफान पौधों को गिरा सकते हैं, विशेषकर लंबी फसलों जैसे मक्का और बाजरे को। इससे फसल को यांत्रिक क्षति होती है।

सब्जियों पर प्रभाव:

खरीफ मौसम में उगाई जाने वाली प्रमुख सब्जियाँ हैं – भिंडी, लौकी, तोरई, टमाटर, मिर्च, करेला, कद्दू आदि।

- **वर्षा:** वर्षा की मदद से सब्जियों की बढ़वार तेज होती है। परंतु अधिक वर्षा के कारण फल फटने, फफूंदी रोग, और कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है।
- **तापमान:** उच्च तापमान वाली सब्जियाँ जैसे भिंडी और करेला इस मौसम में अच्छी होती हैं। लेकिन बहुत अधिक तापमान और आर्द्रता से फूल झड़ने की समस्या आती है।
- **नमी:** वातावरण में अधिक नमी से पत्तियाँ पीली पड़ सकती हैं और जड़ सड़न, पौध गलन जैसी समस्याएँ हो सकती हैं।
- **हवा:** तेज हवा से कोमल पौधे टूट सकते हैं और परागण में बाधा आ सकती है।

पशुपालन पर प्रभाव:

खरीफ मौसम पशुपालन के लिए भी चुनौतीपूर्ण होता है। गाय, भैंस, बकरी जैसे पशु इस मौसम में कई बीमारियों से प्रभावित हो सकते हैं।

- **वर्षा:** बारिश के कारण चारागाहों में हरा चारा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है, लेकिन अत्यधिक गीली जमीन पर पशुओं के खुर रोग, थनैला व अन्य त्वचा रोग हो सकते हैं।
- **तापमान व नमी:** उच्च तापमान और आर्द्रता का प्रभाव पशुओं पर पड़ता है, जिससे दूध उत्पादन कम हो जाता है। पशु सुस्त हो जाते हैं और चारा कम खाते हैं।
- **हवा और तूफान:** तेज हवाओं से अस्थाई गौशालाएं क्षतिग्रस्त हो सकती हैं, जिससे पशुओं को आश्रय की कमी होती है। तूफानी मौसम में संक्रमण फैलने की संभावना भी बढ़ जाती है।

ISSN: 3049-2211

रबी मौसम में मौसम कारकों का फसल, सब्जी एवं पशुपालन पर प्रभाव

भारत में कृषि दो प्रमुख मौसमों में की जाती है – खरीफ और रबी। रबी मौसम सामान्यतः अक्टूबर के अंत से मार्च तक होता है। यह शीतकालीन मौसम होता है, जिसमें तापमान कम, वर्षा बहुत कम या नहीं के बराबर, और वायुमंडलीय नमी कम होती है। इस मौसम के दौरान दिन छोटे और रातें लंबी होती हैं। रबी मौसम में उगाई जाने वाली प्रमुख फसलें हैं – गेहूं, चना, मटर, जौ, सरसों आदि। सब्जियों में पालक, मैथी, मटर, गोभी, गाजर, मूली आदि प्रमुख हैं। साथ ही, पशुपालन पर भी इस मौसम के कई प्रभाव पड़ते हैं। आइए, मौसम कारकों का प्रभाव विस्तार से समझते हैं:

फसलों पर प्रभाव:

रबी मौसम ठंडी जलवायु की फसलों के लिए उपयुक्त होता है।

- **तापमान:** रबी फसलों के लिए 10° सेंटीग्रेट से 25° सेंटीग्रेट तक का तापमान आदर्श माना जाता है। अंकुरण के समय ठंडा तापमान लाभकारी होता है, लेकिन बहुत अधिक ठंड (पाला) फसलों को नुकसान पहुंचा सकती है। जैसे – गेहूं की बालियों में पाले की मार से दाने नहीं बनते, जिससे उपज घट जाती है।
- **वर्षा:** रबी मौसम में वर्षा बहुत कम होती है। सामान्यतः इन फसलों को सिंचाई की आवश्यकता होती है। हल्की वर्षा फसलों को लाभ पहुंचा सकती है, लेकिन असमय बारिश से फसलें गिर जाती हैं, दाने काले पड़ सकते हैं, और बीमारियाँ फैल सकती हैं।
- **नमी (आर्द्रता):** मिट्टी की नमी बीज के अंकुरण के लिए आवश्यक होती है। कम वायुमंडलीय नमी के कारण रोग और कीट अपेक्षाकृत कम होते हैं, जिससे उत्पादन अच्छा रहता है।
- **धूप और दिन की अवधि:** लंबे दिन और मध्यम धूप वाली अवस्था में रबी फसलें अच्छी तरह विकसित होती हैं। गेहूं जैसी फसलें प्रकाश की अवधि (photoperiod) के प्रति संवेदनशील होती हैं।

सब्जियों पर प्रभाव:

रबी मौसम में उगाई जाने वाली सब्जियाँ मुख्यतः ठंड सहन करने वाली होती हैं, जैसे – मटर, गोभी, फूलगोभी, गाजर, पालक आदि।

- **तापमान:** ठंडी जलवायु इन सब्जियों के लिए उपयुक्त होती है। तापमान 15° सेंटीग्रेट से 25° सेंटीग्रेट के बीच हो तो अच्छी उपज मिलती है। बहुत अधिक ठंड पड़ने पर फूलों में कमी आती है या सब्जी का रंग-रूप खराब हो सकता है।
- **वर्षा:** अनावश्यक बारिश या ओलावृष्टि से पत्तेदार सब्जियाँ सड़ जाती हैं और फलों में सड़न या रोग लग जाते हैं। इसलिए वर्षा रहित मौसम इन सब्जियों के लिए बेहतर होता है।
- **नमी और हवा:** कम आर्द्रता पर सब्जियों में रोग कम होते हैं। लेकिन ठंडी हवाएँ और कोहरा पत्तियों को जला सकता है (frost bite)। खासतौर पर पत्तेदार सब्जियों पर प्रभाव दिखता है।

पशुपालन पर प्रभाव:

रबी मौसम में पशुपालन के लिए वातावरण तुलनात्मक रूप से आरामदायक होता है, लेकिन कुछ समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं।

- **ठंड और पाला:** बहुत अधिक ठंड से पशु बीमार पड़ सकते हैं, विशेषकर नवजात बछड़ों और बच्चों में निमोनिया, सर्दी-खांसी की समस्याएँ बढ़ती हैं।
- **चारा और पानी:** हरा चारा सीमित मात्रा में उपलब्ध होता है, क्योंकि घास की वृद्धि कम हो जाती है। इसलिए किसानों को भूसा, सूखा चारा और पशु आहार का भंडारण करना पड़ता है।
- **दूध उत्पादन:** सामान्य रूप से ठंडे मौसम में पशुओं की खुराक अच्छी रहती है और दूध उत्पादन अच्छा होता है, लेकिन अत्यधिक ठंड से उत्पादन घट सकता है।
- **हवा और ठंडी नमी:** कोहरा और ठंडी हवा से पशुओं को सर्दी-जुकाम, आंखों में संक्रमण या त्वचा की एलर्जी हो सकती है।

जायद मौसम में मौसम कारकों का फसल, सब्जी एवं पशुपालन पर प्रभाव

भारत में कृषि को तीन प्रमुख मौसमों में वर्गीकृत किया गया है – खरीफ, रबी और जायद। इनमें जायद मौसम सबसे कम अवधि का होता है, लेकिन इसका कृषि व्यवस्था में विशेष स्थान है। यह मौसम मार्च से जून तक होता है, जब तापमान अधिक होता है और बारिश नहीं के बराबर होती है। यह समय मुख्यतः गर्मी का मौसम होता है, जिसमें धूप तेज, तापमान अधिक, और नमी कम होती है। जायद मौसम में छोटी अवधि की फसलें, सब्जियाँ और पशुपालन गतिविधियाँ की जाती हैं।

फसलों पर प्रभाव:

जायद मौसम में उगाई जाने वाली फसलें हैं – तरबूज, खरबूजा, सूरजमुखी, मूँग, उड़द, मक्का, चारा फसलें आदि।

- **तापमान:** इस मौसम में तापमान 35° सेंटीग्रेट से 45° सेंटीग्रेट तक पहुँच सकता है। अधिक तापमान बीज अंकुरण, फूलों के विकास और फल बनने की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। अत्यधिक गर्मी से परागण में समस्या आती है और दाने नहीं बनते।

ISSN: 3049-2211

- **वर्षा की अनुपस्थिति:** वर्षा न होने के कारण ये फसलें पूरी तरह सिंचाई पर निर्भर होती हैं। पानी की कमी होने पर पौधों की वृद्धि रुक जाती है और उपज कम होती है।
- **नमी (आद्रता):** वायुमंडलीय नमी बहुत कम होती है, जिससे पत्तियाँ जल्दी मुरझा जाती हैं। लेकिन कम नमी से फफूंद रोग कम होते हैं। जबकि, कीटों (जैसे तना छेदक, माहू) का प्रकोप अधिक होता है।
- **धूप और लू:** तेज धूप से पौधों की पत्तियां झुलस सकती है। लू चलने पर पौधों के जल संतुलन में गड़बड़ी आती है। अतः हल्की सिंचाई, मल्चिंग और छाया की आवश्यकता होती है।

सब्जियों पर प्रभाव:

जायद मौसम में उगाई जाने वाली प्रमुख सब्जियाँ हैं – ककड़ी, तरबूज, लौकी, करेला, तोरई, भिंडी आदि।

- **तापमान:** गर्मियों की सब्जियाँ उच्च तापमान सहन कर सकती हैं, लेकिन 40° सेंटीग्रेट से अधिक तापमान पर फूल झड़ने लगते हैं, फलन कम होता है।
- **सिंचाई:** नियमित और हल्की सिंचाई इन सब्जियों के लिए आवश्यक है। अनियमित सिंचाई से फल फट जाते हैं या स्वाद खराब हो जाता है।
- **कीट-रोग:** अधिक गर्मी में लाल मकड़ी, फल छेदक, और चूसक कीटों का प्रकोप अधिक देखा जाता है। रोकथाम के लिए जैविक या रसायनिक नियंत्रण की आवश्यकता होती है।
- **हवा:** गर्म और शुष्क हवाओं के कारण पौधे सूख हैं। इससे उत्पादन घटता है और गुणवत्ता प्रभावित होती है।

पशुपालन पर प्रभाव:

जायद मौसम में गर्मी पशुओं के लिए अत्यंत कष्टकारी हो सकती है।

- **तापमान और लू:** अत्यधिक गर्मी से पशुओं को हीट स्ट्रेस होता है। वे चारा कम खाते हैं, पानी अधिक पीते हैं, और दूध उत्पादन घट जाता है।
- **पानी की आवश्यकता:** इस मौसम में पशुओं के लिए साफ और ठंडा पानी आवश्यक होता है। पानी की कमी से निर्जलीकरण हो सकता है।
- **चारा की उपलब्धता:** इस मौसम में, हरे चारे की कमी हो सकती है। सूखा चारा और सायलेज का भंडारण जरूरी होता है।
- **बीमारियाँ:** इस मौसम में पशुओं को पाचन संबंधी समस्याएँ, त्वचा रोग, और मक्खी-जनित रोग अधिक होते हैं। सफाई और छायादार गौशालाएं आवश्यक होती हैं।

खरीफ, रबी और जायद मौसम में मौसम कारकों का फसल, सब्जी एवं पशुपालन पर प्रभाव से बचाव के उपाय

भारत में कृषि प्रणाली मुख्यतः तीन मौसमों पर आधारित होती है – खरीफ (जून-अक्टूबर), रबी (नवंबर-मार्च) और जायद (मार्च-जून)। इन तीनों मौसमों में तापमान, वर्षा, नमी और हवा जैसे मौसम कारकों का फसलों, सब्जियों और पशुपालन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि समय रहते इन प्रभावों से बचाव के उपाय न किए जाएं, तो भारी नुकसान हो सकता है। नीचे प्रत्येक मौसम के लिए बचाव के प्रमुख उपाय दिए गए हैं:

खरीफ मौसम (मानसून):

मुख्य चुनौतियाँ: अत्यधिक वर्षा, जलभराव, उच्च आर्द्रता, कीट-रोगों का प्रकोप

बचाव के उपाय:

- जल निकासी की व्यवस्था करें ताकि खेतों में जलभराव न हो।
- बीजजनित रोगों से बचाव के लिए बीज शोधन करें ।
- झुलसा, ब्लास्ट जैसे रोगों से बचाव के लिए उचित प्रबंधन करें।
- सघन पौधारोपण से बचें; पौधों के बीच उचित दूरी रखें।
- पशुओं के आश्रय को पानी और कीचड़ से मुक्त रखें, थनैला और खुर रोग से बचाव करें।

रबी मौसम (ठंडा मौसम):

मुख्य चुनौतियाँ: पाला, शीतलहर, असमय वर्षा, ओलावृष्टि

बचाव के उपाय:

- पाले से बचाने के लिए खेतों में हल्की सिंचाई करें।
- ओलावृष्टि से बचाने हेतु फसलों को कवर करें (नेट, पॉलीहाउस)।
- पशुओं के लिए गौशाला में गर्म आवरण, सूखी बिछावन और ठंडी हवा से सुरक्षा की व्यवस्था करें।
- खुराक बढ़ाएं, जिससे ठंड में ऊर्जा की पूर्ति हो सके।

जायद मौसम (गर्मी का मौसम):

मुख्य चुनौतियाँ: अत्यधिक गर्मी, जल की कमी, हीट स्ट्रेस, सूखा

बचाव के उपाय:

- टपक सिंचाई (ड्रीप इरिगेसन) व मल्चिंग से पानी की बचत और पौधों को ठंडक प्रदान करें।
- तेज धूप और लू से बचाव के लिए पौधों पर छाया जाल (शेड नेट) लगाएं।
- फसलों को सुबह या शाम को सिंचाई करें, दोपहर की गर्मी में नहीं।
- पशुओं को ठंडा पानी, छायादार स्थान और पर्याप्त साफ हवा प्रदान करें।

- नहाने और पानी में बैठने की व्यवस्था करें, विशेषकर भैंसों के लिए।

खरीफ, रबी और जायद – इन तीनों कृषि मौसमों में मौसम कारक जैसे तापमान, वर्षा, आर्द्रता, वायु गति एवं धूप फसलों, सब्जियों और पशुपालन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। खरीफ ऋतु में पर्याप्त वर्षा और उच्च तापमान धान, मक्का, सोयाबीन जैसी फसलों के विकास के लिए अनुकूल होते है, लेकिन अधिक वर्षा से जलभराव और कीट-रोग की समस्या भी बढ़ जाती है। रबी मौसम में शीतल एवं शुष्क जलवायु गेहूँ, जौ, चना और सरसों जैसी फसलों के लिए उपयुक्त होती है; हालांकि पाला और ठंडी हवाएँ नुकसान पहुँचा सकती हैं। वहीं, जायद मौसम में सीमित वर्षा और अधिक तापमान वाली परिस्थितियाँ तरबूज, खरबूज, मक्का एवं सब्जियों की खेती के लिए अनुकूल रहती हैं, परंतु सिंचाई प्रबंधन अत्यंत आवश्यक होता है। सब्जियों में तापमान और नमी का संतुलन उत्पादन की गुणवत्ता व मात्रा दोनों को प्रभावित करता है। पशुपालन में मौसम परिवर्तन दूध उत्पादन, पशुओं की स्वास्थ्य स्थिति और चारे की उपलब्धता पर असर डालता है। मौसम कारकों का समुचित प्रबंधन एवं मौसम आधारित कृषि-कार्य योजना न केवल उत्पादन बढ़ाने में सहायक होती है बल्कि किसान की आय और स्थायित्व को भी सुनिश्चित करती है।

हर मौसम में मौसम कारकों का प्रभाव अलग-अलग होता है, परंतु सामयिक तैयारी, वैज्ञानिक तकनीक और स्थानीय जानकारी के उपयोग से इन प्रभावों से काफी हद तक बचाव किया जा सकता है। कृषि में मौसम आधारित रणनीति अपनाकर किसान उत्पादन में वृद्धि और नुकसान में कमी ला सकते हैं।

♣♣♣

पोल्ट्री में हीट स्ट्रेस – समस्या और समाधान

अर्चना बारीक- पी.एच.डी. शोधधार्थी, **प्रतिभा ताटी-** टीचिंग असिस्टेन्ट
सौरभ बनर्जी- पशुचिकित्सा सहायक शल्यज्ञ, **प्रियल तिवारी एवं सुनीता पटेल-** टीचिंग असिस्टेन्ट

पोल्ट्री में हीट स्ट्रेस वह स्थिति है जब पक्षी अपने शरीर में उत्पन्न होने वाली गर्मी और बाहर निकलने वाली गर्मी के बीच संतुलन बनाए रखने में असमर्थ हो जाते हैं, और यह सभी उम्र एवं सभी प्रकार के पक्षियों में हो सकता है। सामान्य परिस्थितियों में, जिसे थर्मोन्यूट्रल ज़ोन कहा जाता है, पक्षी अपने सामान्य व्यवहार द्वारा नियंत्रित रूप से गर्मी बाहर निकालते हैं और शरीर का तापमान स्थिर रहता है, इसलिए कोई हीट स्ट्रेस नहीं होता। लेकिन जब तापमान अपर क्रिटिकल स्तर से ऊपर चला जाता है, तो पक्षी शरीर की गर्मी कम करने के लिए पैंटिंग (तेज़ साँस लेना) शुरू करते हैं, जो शुरुआत में सामान्य प्रतिक्रिया होती है। जैसे-जैसे तापमान बढ़ता है, पैंटिंग की दर बढ़ती जाती है और यदि शरीर में बनने वाली गर्मी, अधिकतम बाहर निकलने वाली गर्मी से अधिक हो जाए—चाहे अचानक या लंबे समय तक—तो यह स्थिति घातक हो सकती है और पक्षियों की मृत्यु भी हो सकती है। ब्रॉयलर का सामान्य शरीर तापमान लगभग 41°C (106°F) होता है, और यदि यह इससे लगभग 4°C अधिक बढ़ जाए, तो पक्षी की मृत्यु हो सकती है।

शरीर में गर्मी कैसे उत्पन्न होती है और पोल्ट्री हाउस में अन्य गर्मी के स्रोत

पक्षियों के शरीर में गर्मी मुख्य रूप से मेटाबोलिज़्म (उपापचय) की प्रक्रिया से उत्पन्न होती है, जिसमें शरीर का रख-रखाव , वृद्धि और अंडा उत्पादन शामिल हैं। गर्मी का उत्पादन कई कारकों पर निर्भर करता है, जैसे शरीर का वजन, प्रजाति और नस्ल, उत्पादन स्तर, आहार की मात्रा, आहार की गुणवत्ता, तथा कुछ हद तक गतिविधि और व्यायाम। पोल्ट्री हाउस के अंदर, वेंटिलेशन से आने वाली हवा के तापमान के अलावा, छत और दीवारों से भी गर्मी आती है। लिटर (बिछावन) से उत्पन्न गर्मी का अधिकांश भाग नमी को वाष्पित कर उसे सूखा रखने में उपयोग होता है, लेकिन गर्म मौसम में गीला लिटर हीट स्ट्रेस वाले पक्षियों को और अधिक असहज बना देता है, जबकि सूखा लिटर पक्षियों को डस्ट बाथ लेने में मदद करता है जिससे उन्हें ठंडक मिलती है। बिजली के बल्ब और मोटरों से उत्पन्न गर्मी बहुत कम होती है (आमतौर पर 1% से भी कम), इसलिए कुल मिलाकर शरीर की मेटाबोलिक गर्मी ही सबसे प्रमुख स्रोत होती है।

पक्षी गर्मी कैसे खोते हैं ?

पक्षी अपने शरीर की गर्मी को कई तरीकों से बाहर निकालते हैं और अपने व्यवहार को इस तरह बदलते हैं कि वे थर्मोन्यूट्रल ज़ोन में बने रहें। गर्मी खोने के मुख्य तरीके हैं—

1. **रेडिएशन**: जिसमें यदि आसपास की सतहों का तापमान पक्षी के शरीर से कम हो तो शरीर की गर्मी बाहर निकलती है, लेकिन यदि दीवारें या छत गर्म हों तो वे उल्टा पक्षी को गर्मी दे सकती हैं।
2. **कन्वेक्शन**: जिसमें गर्म शरीर के आसपास की हवा ऊपर उठती है और उसकी जगह ठंडी हवा आती है, जिससे गर्मी बाहर निकलती है। यदि हवा का प्रवाह पर्याप्त तेज़ हो, तो यह प्रक्रिया और प्रभावी हो जाती है क्योंकि यह शरीर के आसपास की स्थिर हवा को हटा देती है और ठंडक प्रदान करती है।
3. **कंडक्शन:** कंडक्शन में गर्मी एक सतह से दूसरी सतह में सीधे संपर्क द्वारा स्थानांतरित होती है। उदाहरण के लिए, जब पक्षी ठंडे लिटर (बिछावन) पर बैठते हैं, तो उनके शरीर की गर्मी लिटर में चली जाती है। लेकिन कुछ समय बाद लिटर का तापमान भी पक्षी के शरीर के

ISSN: 3049-2211

तापमान के करीब हो जाता है, जिससे यह प्रक्रिया ज्यादा समय तक प्रभावी नहीं रहती।

4. **वाष्पन:** जब पक्षी रेडिएशन, कन्वेक्शन और कंडक्शन से शरीर की गर्मी का संतुलन नहीं बना पाते, तब वे एवापोरेटिव हीट लॉस यानी पैंटिंग का सहारा लेते हैं। पक्षियों में पसीना ग्रंथियाँ नहीं होतीं, इसलिए वे तेज़ साँस लेकर शरीर की गर्मी बाहर निकालते हैं। यह प्रक्रिया उच्च तापमान पर बहुत महत्वपूर्ण होती है, लेकिन यह तभी प्रभावी रहती है जब वातावरण में नमी कम हो, क्योंकि अधिक आर्द्रता में गर्मी बाहर निकालना कठिन हो जाता है।

पोल्ट्री हाउस से गर्मी कैसे निकलती है ?

पोल्ट्री हाउस से गर्मी मुख्य रूप से वेंटिलेशन (हवा के प्रवाह) के माध्यम से बाहर निकलती है और कुछ मात्रा में छत और दीवारों के माध्यम से कंडक्शन द्वारा भी निकलती है, खासकर जब वे सीधे सूर्य के संपर्क में नहीं होते। गर्म मौसम में, हवा का आदान-प्रदान सबसे प्रमुख तरीका होता है, क्योंकि ताज़ी हवा अंदर आकर गर्म हवा को बाहर निकालती है और हाउस को ठंडा रखने में मदद करती है।

बढ़ते तापमान पर पक्षियों की प्रतिक्रिया

जैसे-जैसे तापमान बढ़ता है, पक्षी अपने शरीर की गर्मी का संतुलन बनाए रखने के लिए अपने सामान्य व्यवहार में बदलाव करते हैं। वे अक्सर अन्य पक्षियों से दूर जाने की कोशिश करते हैं, ठंडी सतहों जैसे दीवारों के पास या हवा के प्रवाह वाली जगहों पर चले जाते हैं। पक्षी अपने पंख शरीर से दूर उठा लेते हैं ताकि शरीर की गर्मी बाहर निकल सके और बिना पंख वाले हिस्से हवा के संपर्क में आएँ। वे धीरे-धीरे पैंटिंग (तेज़ साँस लेना) शुरू करते हैं और अपनी गतिविधि कम करके अधिक आराम करते हैं ताकि शरीर में गर्मी का उत्पादन कम हो। साथ ही वे खाना कम खाते हैं और पानी का सेवन बढ़ा देते हैं। शरीर की गर्मी निकालने के लिए रक्त का प्रवाह आंतरिक अंगों से त्वचा की ओर बढ़ जाता है, जिससे त्वचा का रंग गहरा दिखाई दे सकता है। तापमान और बढ़ने पर पैंटिंग की गति भी तेज़ हो जाती है, जो गंभीर हीट स्ट्रेस का संकेत है।

पैंटिंग के परिणाम

पैंटिंग के दौरान पक्षियों के श्वसन मार्ग से नमी के वाष्पीकरण द्वारा गर्मी बाहर निकलती है, जिससे शरीर को ठंडक मिलती है। लेकिन पैंटिंग में मांसपेशियों की गतिविधि होती है, जिसके लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है और इससे कुछ अतिरिक्त गर्मी भी उत्पन्न होती है, इसलिए यह जरूरी है कि वाष्पीकरण से निकलने वाली गर्मी, उत्पन्न गर्मी से अधिक हो। धीमी पैंटिंग सामान्य होती है और लंबे समय तक चल सकती है, लेकिन श्वसन दर सामान्य से लगभग 10 गुना तक बढ़ सकती है। अधिक पैंटिंग से पक्षी थक जाते हैं, जिससे वे लंबे समय तक गर्मी सहन करने में असमर्थ हो जाते हैं। उच्च आर्द्रता की स्थिति में एवापोरेटिव हीट लॉस कम प्रभावी हो जाता है। तेज़ श्वसन के कारण कार्बन डाइऑक्साइड की कमी हो जाती है, जिससे रक्त का pH बढ़ जाता है, जिसे रेस्पिरेटरी अल्कालोसिस कहते हैं; साथ ही पोटैशियम और फॉस्फेट की कमी तथा सोडियम और क्लोराइड का स्तर बढ़ जाता है। इन सभी प्रभावों के कारण पक्षियों की वृद्धि दर और अंडा उत्पादन कम हो जाता है।

पोल्ट्री में हीट स्ट्रेस कम करने की रणनीतियाँ

पोल्ट्री में हीट स्ट्रेस को कम करने के लिए विभिन्न उपाय अपनाए जा सकते हैं, जिनमें दो प्रमुख रणनीतियाँ हैं—हाउसिंग मैनेजमेंट और न्यूट्रिशनल मैनेजमेंट। हाउसिंग मैनेजमेंट में पक्षियों के रहने के वातावरण को नियंत्रित करना शामिल है, जैसे उचित वेंटिलेशन (हवा का प्रवाह), तापमान नियंत्रण और सही लाइटिंग की व्यवस्था, ताकि शेड के अंदर ठंडा और आरामदायक माहौल बना रहे। वहीं न्यूट्रिशनल मैनेजमेंट में पक्षियों को संतुलित आहार देना शामिल है, जिसमें ऐसे पोषक तत्व हों जो उन्हें हीट स्ट्रेस से निपटने में मदद करें। ये दोनों रणनीतियाँ मिलकर हीट स्ट्रेस को कम करने और उत्पादन बनाए रखने में प्रभावी होती हैं। इसके अलावा, फार्म पर तापमान और आर्द्रता की नियमित निगरानी करना बहुत आवश्यक है, ताकि समय रहते उचित कदम उठाए जा सकें।

1. हाउसिंग मैनेजमेंट –

- गर्म समय में पक्षियों को कम परेशान करने के लिए दैनिक कार्यों का सही समय निर्धारण करें।
- गर्म अवधि में लाइट की तीव्रता कम रखें ताकि गतिविधि कम हो।
- लाइटिंग प्रोग्राम ऐसा रखें कि सुबह अधिक और दोपहर में कम रोशनी मिले, जिससे फीड सेवन बढ़े।
- शेड के दोनों ओर पेड़ लगाएँ तथा छत पर एग्री वेस्ट, सूखे नारियल पत्ते या सफेदी करें।
- पानी की टंकी शेड के अंदर रखें; बाहर होने पर उस पर छाया (पंडाल) और सफेदी करें।
- शेड के साइड मेष पर गीली बोरी लगाकर वातावरण ठंडा रखें।
- छत पर स्प्रिंकलर और अंदर फॉगर्स का उपयोग करें (उच्च आर्द्रता में सीमित उपयोग)।
- पंखे और फॉगर्स तापमान बढ़ने से 1 घंटा पहले चालू करें और पैंटिंग रुकने के 30 मिनट बाद बंद करें; फॉगर्स हर 20 मिनट में 2 मिनट चलाएँ।

ISSN: 3049-2211

- ड्रिंकर्स को साफ रखें और निप्पल सिस्टम में पाइपलाइन को नियमित रूप से फ्लश करें।
- निप्पल ड्रिंकर की ऊँचाई, दबाव और पानी का फ्लो (>70 ml/मिनट/निप्पल) सही रखें।
- पानी की पाइपलाइन को गीली बोरी/एग्री वेस्ट से ढकें; संभव हो तो अंडरग्राउंड पाइपलाइन रखें।
- भीड़भाड़ से बचने के लिए पर्याप्त जगह दें।
- ब्रॉयलर में 30 दिन बाद 20–30% पक्षियों को हटाकर (thinning) हीट स्ट्रेस मृत्यु कम करें।

2. न्यूट्रिशनल मैनेजमेंट –

- सुबह जल्दी और शाम (ठंडे समय) में फीड दें; सामान्यतः 1/3 सुबह और 2/3 शाम को, ताकि फीड इंटेक और एगशेल क्वालिटी बनी रहे।
- वेट मैश फीडिंग, क्रम्बल या पेलेट फीड में फैट/मोलासेस मिलाकर स्वाद बढ़ाएँ, जिससे फीड इंटेक बढ़े।
- अत्यधिक गर्मी में ब्रॉयलर (खासकर >30 दिन) के लिए मैश फीड बेहतर है, यदि फीड हटाना संभव न हो।
- पीक तापमान से पहले (लगभग 9 बजे से 4:30 बजे तक) फीड को हटाना उपयोगी है।
- कम फीड इंटेक की भरपाई के लिए फीड को पोषक तत्व, विटामिन और मिनरल से सघन बनाएं।
- आसानी से पचने वाले प्रोटीन स्रोत, विशेषकर वेजिटेबल प्रोटीन का उपयोग करें।
- फॉर्मुलेशन में डाइजेस्टिबल अमीनो एसिड पर ध्यान दें; बहुत अधिक क्रूड प्रोटीन न रखें; सिंथेटिक अमीनो एसिड से CP कम रखते हुए AA स्तर बनाए रखें।
- कार्बोहाइड्रेट/प्रोटीन की बजाय फैट/ऑयल से ऊर्जा संतुलन करें, क्योंकि ये कम बॉडी हीट उत्पन्न करते हैं। ऑयल में लिनोलेक एसिड होता है, जो परफॉर्मेंस और एग वेट बढ़ाता है तथा फीड का Lokn सुधारता है।
- विटामिन C और E (एंटीऑक्सीडेंट) का स्तर गर्मियों में बढ़ाएँ, इससे हीट स्ट्रेस सहनशीलता और इम्युनिटी बेहतर होती है।
- बीटेन (Betaine) पानी के संतुलन, सेल इंटीग्रिटी और एनाबॉलिक क्रियाओं को बनाए रखने में मदद करता है; साथ ही मिथाइल ग्रुप देकर उत्पादन बढ़ाता है।
- ठंडा साफ पानी पर्याप्त मात्रा में दें; पानी में इलेक्ट्रोलाइट्स (KCl, NH_4Cl, $NaHCO_3$) मिलाएँ; क्लोरीनेटेड पानी की बर्फ भी उपयोगी है।
- लेयर डाइट में Dietary Electrolyte Balance (DEB) <250 mEq/kg रखें; ब्रॉयलर (pre-starter, starter, finisher) में क्रमशः <220, 200 और 180 mEq/kg रखें।
- गर्मियों में Maduramycin को एंटीकोक्सिडियल के रूप में उपयोग करना बेहतर है (पानी का सेवन बढ़ाता है), जबकि Nicarbazine और Monensin का नकारात्मक प्रभाव हो सकता है।
- गर्मी में मिनरल की हानि बढ़ती है, इसलिए मिनरल प्रीमिक्स की मात्रा लगभग 1.25% तक बढ़ाएँ।
- हाइड्रॉक्सी ट्रेस मिनरल्स (जैसे Intellibond) का उपयोग अंडा उत्पादन सुधारने और VwVs gq, vaMs कम करने में सहायक है।
- IntelliOpt (हाइड्रॉक्सी + chelated ट्रेस मिनरल्स का संयोजन) का उचित स्तर पर उपयोग हीट स्ट्रेस में पोल्ट्री परफॉर्मेंस सुधारता है।

हीट स्ट्रेस में पानी के माध्यम से प्रिवेंटिव ट्रीटमेंट

- **मध्यम गर्म मौसम में:**
  - एस्कॉर्बिक एसिड (Vitamin C) – 62.5 mg/L
  - एसीटाइल सैलिसिलिक एसिड – 62.5 mg/L
  - सोडियम बाइकार्बोनेट – 75 mg/L
  - पोटैशियम क्लोराइड – 125 mg/L
- **अधिक हीट स्ट्रेस में:**
  - एस्कॉर्बिक एसिड (Vitamin C) – 400 mg/L
  - इलेक्ट्रोलाइट्स (Electrolytes)
  - एसीटाइल सैलिसिलिक एसिड (Disprin) – 1 टैबलेट / 5 लीटर पानी
  - सोडियम बाइकार्बोनेट – 1 ग्राम / लीटर

निष्कर्ष

हीट स्ट्रेस पोल्ट्री उत्पादन में एक बड़ी चुनौती है, जो कई स्वास्थ्य समस्याओं और उत्पादन में कमी का कारण बन सकती है। इसलिए इसके कारणों और पक्षियों की प्रतिक्रियाओं को समझना तथा उचित नियंत्रण उपाय अपनाना बहुत आवश्यक है। प्रभावी आवास प्रबंधन और न्यूट्रिशनल मैनेजमेंट रणनीतियाँ हीट स्ट्रेस को कम करने और पोल्ट्री की उत्पादन क्षमता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

♣♣♣

प्राकृतिक खेती में रेखा सिंह का योगदान महिलाओं को मिला रोजगार

डा. द्वारका- अतिथि शिक्षक, कीटशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना, मध्य प्रदेश

शोभाराम ठाकुर- वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, एक्रिप परियोजना तिल फसल, कृषि महाविद्यालय, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश

मनोज कुमार अहिरवार- कृषि विज्ञान केन्द्र प्रमुख, दमोह, मध्य प्रदेश

निशा चढ़ार- एम.एस.सी. (बाटनी), महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, शासकीय स्नातकोत्तर उत्कृष्ट महाविद्यालय, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश

सतना जिले के पिपरा महाराजपुर पंचायत की महिला किसान रेखा सिंह ने अपनी मेहनत और लगन से प्राकृतिक खेती के क्षेत्र में एक प्रेरणादायक उदाहरण प्रस्तुत किया है। पहले वे पारंपरिक खेती पर निर्भर थीं और बीज, डीएपी तथा यूरिया जैसे उर्वरकों के लिए बाजार पर निर्भर रहना पड़ता था, जिससे खेती की लागत अधिक होती थी। लगभग तीन वर्ष पहले एक सामाजिक संस्था से जुड़ने के बाद उन्होंने प्राकृतिक खेती की तकनीकों को अपनाया और किसान हित समूह की अध्यक्ष बनने के साथ चित्रकूट फार्म प्रोड्यूसर कंपनी (एफपीओ) से भी जुड़ीं। इससे उन्हें उन्नत कृषि तकनीकों और सस्ते बीजों की जानकारी मिली, जिससे उनकी खेती की लागत कम हुई और आय में वृद्धि हुई। प्राकृतिक खेती में प्राप्त अनुभव के आधार पर रेखा सिंह आज मास्टर ट्रेनर के रूप में कार्य कर रही हैं और अब तक 150 से अधिक ग्रामीण महिलाओं को प्रशिक्षण देकर उन्हें खेती के माध्यम से आर्थिक रूप से सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे चुकी हैं। हल्दी की खेती को अपनाकर उन्होंने अपनी एक अलग पहचान बनाई और क्षेत्र की अन्य महिलाओं को भी इसके लिए प्रेरित किया। रेखा सिंह का मानना है कि यदि महिलाएं संगठित होकर प्राकृतिक एवं आधुनिक खेती की तकनीकों को अपनाएं तो वे आसानी से आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकती हैं। उनकी सफलता की कहानी ग्रामीण महिला सशक्तिकरण और प्राकृतिक खेती के महत्व को दर्शाती है तथा अन्य किसानों के लिए भी प्रेरणादायक उदाहरण प्रस्तुत करती है।

परिचय

मध्यप्रदेश के सतना जिले की एक जनजातीय महिला किसान रेखा सिंह ने अपने संघर्ष, मेहनत और दृढ़ संकल्प से ग्रामीण महिला सशक्तिकरण की एक प्रेरणादायक मिसाल प्रस्तुत की है। प्राकृतिक खेती को अपनाकर उन्होंने न केवल अपनी खेती को लाभकारी बनाया, बल्कि आसपास की महिलाओं को भी प्रशिक्षण देकर उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने का मार्ग दिखाया। आज रेखा सिंह प्राकृतिक खेती की "मास्टर ट्रेनर" के रूप में पहचान बना चुकी हैं और लगभग 150 से अधिक महिलाओं को प्रशिक्षित कर उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

ISSN: 3049-2211

रेखा सिंह का सामाजिक और भौगोलिक परिवेश

सतना जिला मुख्यालय से लगभग "55 किलोमीटर दूर पर्समनिया पहाड़ क्षेत्र" की "पिपरा महाराजपुर पंचायत" की निवासी "35 वर्षीय रेखा सिंह" एक साधारण किसान परिवार से आती हैं। यह क्षेत्र मुख्यतः जनजातीय बहुल है, जहां आज भी पारंपरिक कृषि पद्धतियों पर निर्भरता अधिक है। सीमित संसाधनों और कठिन परिस्थितियों के बावजूद रेखा सिंह ने अपने आत्मविश्वास और परिश्रम से कृषि क्षेत्र में एक नई पहचान स्थापित की है।

पारंपरिक खेती से प्राकृतिक खेती की ओर यात्रा

शुरुआत में रेखा सिंह भी अन्य किसानों की तरह पारंपरिक खेती पर निर्भर थीं। खेती के लिए उन्हें बीज, डीएपी, यूरिया और अन्य रासायनिक उर्वरकों के लिए बाजार पर निर्भर रहना पड़ता था। इससे उनकी खेती की लागत काफी बढ़ जाती थी। कई बार समय पर खाद और बीज उपलब्ध न होने के कारण फसल उत्पादन भी प्रभावित होता था। इसके अलावा बाजार तक आने-जाने में समय और धन दोनों की हानि होती थी।

इन समस्याओं ने उन्हें खेती के वैकल्पिक तरीकों के बारे में सोचने के लिए प्रेरित किया। लगभग ''तीन वर्ष पूर्व'' रेखा सिंह एक सामाजिक संस्था से जुड़ीं, जहां उन्हें प्राकृतिक खेती के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। यही उनके जीवन का महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ।

किसान समूह और एफपीओ से जुड़ाव

सामाजिक संस्था से जुड़ने के बाद रेखा सिंह ने "किसान हित समूह" में सक्रिय भागीदारी शुरू की और जल्द ही उन्हें समूह की "अध्यक्ष" के रूप में जिम्मेदारी मिली। इसके बाद वे "चित्रकूट एफपीओ (फार्म प्रोड्यूसर कंपनी)" की सदस्य बनीं।

एफपीओ से जुड़ने के बाद उन्हें आधुनिक कृषि तकनीकों, प्राकृतिक खेती, बीज उत्पादन, जैविक खाद निर्माण तथा फसल प्रबंधन के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त हुई। इससे उनकी खेती की लागत में कमी आई और उत्पादन में सुधार हुआ।

प्राकृतिक खेती की मास्टर ट्रेनर के रूप में पहचान

प्राकृतिक खेती में सफलता प्राप्त करने के बाद रेखा सिंह को प्रशिक्षण कार्यक्रमों में शामिल होने का अवसर मिला। उन्होंने प्राकृतिक खेती के विभिन्न पहलुओं जैसे- जीवामृत और घनजीवामृत का उपयोग, बीज उपचार, प्राकृतिक कीट नियंत्रण, मिश्रित एवं बहुफसली खेती, मिट्टी की उर्वरता संरक्षण जैसे विषयों का गहन प्रशिक्षण प्राप्त किया।

अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर रेखा सिंह आज "प्राकृतिक खेती की मास्टर ट्रेनर" के रूप में कार्य कर रही हैं। उन्होंने अब तक "150 से अधिक महिलाओं को प्राकृतिक खेती का प्रशिक्षण" दिया है। उनके मार्गदर्शन से कई महिलाएं खेती को आय का सशक्त माध्यम बना रही हैं।

हल्दी की खेती से मिली नई पहचान

रेखा सिंह की सफलता की कहानी में "हल्दी की खेती" एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। चित्रकूट एफपीओ से जुड़ने के बाद उन्हें बेहतर गुणवत्ता के बीज घर पर ही उपलब्ध होने लगे। पहले जहां उन्हें बाजार से महंगे दाम पर बीज खरीदना पड़ता था, वहीं एफपीओ के माध्यम से उन्हें "करीब 70 रुपये प्रति किलो" की दर से बीज मिलने लगा।

इससे उनकी खेती की लागत कम हुई और उत्पादन में वृद्धि हुई। हल्दी की खेती से उन्हें अच्छी आय प्राप्त हुई और इसी के साथ उनकी पहचान क्षेत्र में एक प्रगतिशील महिला किसान के रूप में बनने लगी।

आज रेखा सिंह न केवल स्वयं हल्दी का उत्पादन कर रही हैं, बल्कि अन्य किसानों और विशेष रूप से महिलाओं को भी हल्दी की खेती और प्राकृतिक कृषि पद्धतियों को अपनाने के लिए प्रेरित कर रही हैं।

ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में योगदान

रेखा सिंह के प्रयासों से क्षेत्र की कई महिलाएं खेती के माध्यम से आय अर्जित करने लगी हैं। उनके प्रशिक्षण कार्यक्रमों में महिलाएं प्राकृतिक खाद बनाना, बीज संरक्षण, जैविक कीट प्रबंधन तथा कम लागत वाली खेती की तकनीकों को सीख रही हैं।

इससे महिलाओं में आत्मविश्वास बढ़ा है और वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने की दिशा में आगे बढ़ रही हैं। रेखा सिंह का मानना है कि यदि महिलाएं "संगठित होकर खेती करें और आधुनिक तकनीकों को अपनाएं", तो वे न केवल अपनी आय बढ़ा सकती हैं बल्कि परिवार और समाज के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

प्रेरणा और संदेश

रेखा सिंह की सफलता यह साबित करती है कि सीमित संसाधनों के बावजूद यदि सही मार्गदर्शन, मेहनत और दृढ़ इच्छाशक्ति हो तो कोई भी व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकता है। प्राकृतिक खेती अपनाकर उन्होंने न केवल अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को मजबूत किया बल्कि सैकड़ों महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने का रास्ता भी दिखाया।

अन्य किसानों के लिए संदेश

रेखा सिंह अन्य किसानों को संदेश देती हैं कि-

- ✓ प्राकृतिक खेती अपनाकर खेती की लागत कम की जा सकती है।
- ✓ जैविक और प्राकृतिक उत्पादों की बाजार में मांग तेजी से बढ़ रही है।
- ✓ किसान यदि समूह और एफपीओ से जुड़कर कार्य करें तो उन्हें तकनीकी जानकारी, बीज और विपणन में बेहतर अवसर मिल सकते हैं।
- ✓ महिलाओं को खेती में सक्रिय भागीदारी करनी चाहिए ताकि वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकें।

निष्कर्ष

रेखा सिंह की यह सफलता कहानी ग्रामीण भारत में महिला सशक्तिकरण और प्राकृतिक खेती के महत्व को दर्शाती है। उन्होंने अपने संघर्ष, मेहनत और नेतृत्व क्षमता के बल पर यह साबित कर दिया कि महिलाएं भी कृषि क्षेत्र में बदलाव की अग्रदूत बन सकती हैं।

आज रेखा सिंह केवल एक किसान नहीं बल्कि "ग्रामीण विकास, महिला सशक्तिकरण और प्राकृतिक खेती की प्रेरक प्रतीक" बन चुकी हैं।

♣♣♣

ग्रीष्मकालीन मूँग की खेती में कीटों का प्रकोप और प्रबंधन

आवेश यादव- छात्र, कीट विज्ञान विभाग,
राम वीर- सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान विभाग
मो० जाकिर हुसैन, विकास कुमार एवं **राम जी -** छात्र, कीट विज्ञान विभाग
आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या, उत्तर प्रदेश

मूँग (*विग्ना रेडियाटा*) जिसे भारत में हरी दाल या कभी-कभी मूंगबीन भी कहा जाता है, एक प्रमुख दलहनी फसल है। यह फलीदार पौधों के परिवार की प्रजाति है और मुख्य रूप से पूर्वी एशिया, दक्षिणपूर्वी एशिया तथा भारतीय उपमहाद्वीप में उगाई जाती है। मूँग सस्ता और अच्छा प्रोटीन स्रोत होने के साथ-साथ मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में भी सहायक है, इसलिए इसे हरी खाद के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। भारत में इसकी खेती उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और बिहार में बड़े पैमाने पर होती है। पोषण मूल्य और हल्के पाचन गुणों के कारण इसे सुपरफूड माना जाता है।

हालाँकि, मूँग की खेती में कीटों का प्रकोप एक गंभीर चुनौती है। हरा तेला (जस्सिड), रस चूसक कीट (थ्रिप्स), सफेद मक्खी, माहू (एफिड), फलछेदक और पत्ती लपेटक जैसे कीट फसल को भारी नुकसान पहुँचाते हैं। ये कीट पूरी वानस्पतिक वृद्धि अवस्था में सक्रिय रहते हैं और उपज में उल्लेखनीय कमी कर देते हैं। भारत में मूँग की फसल पर 64 से अधिक कीट प्रजातियों का हमला दर्ज किया गया है, जिससे उत्पादन घटता है, गुणवत्ता प्रभावित होती है और किसानों को आर्थिक हानि होती है। यही कारण है कि मूँग की सफल खेती के लिए कीट प्रबंधन को अनिवार्य माना जाता है।

प्रमुख कीट एवं उनका प्रकोप

1. तना मक्खी (*ओफियोमिया फेज़ियोली*):

- वयस्क मक्खी नीले रंग की होती है और इसका जीवन चक्र 11-22 दिनों में पूरा हो जाता है।
- लार्वा तने के मुख्य भाग को खा जाते हैं और जड़ों तक सुरंग बना लेते हैं।
- प्रभावित पौधों की वृद्धि रुक जाती है, पैदावार घटती है और पौधे मुरझा जाते हैं।
- विशिष्ट लक्षण पहली दो पत्तियों का मुरझाना और पौधे का पीला पड़ जाना।

2. फली छेदक (*हेलिकोवरपा आर्मिगेरा*):

- यह एक बहुभक्षी कीट है जो मूँग सहित कई फसलों को भारी नुकसान पहुँचाता है।
- इसके लार्वा पत्तियों, फूलों, फलियों और बीजों को खाते हैं, जिससे उपज में कमी आती है।
- पहचान पत्तियों पर गोल चबाने के निशान और कोणीय छेद।

ISSN: 3049-2211

3. धब्बेदार फली छेदक (*मारुका विटराटा फैब्रिसियस*):

- लार्वा क्रीम रंग के होते हैं और प्रत्येक खंड पर काले धब्बे पाए जाते हैं, इसी कारण इसे धब्बेदार फली छेदक कहा जाता है।
- यह मूँग के अलावा काला चना, लोबिया, अरहर और लबलब को भी प्रभावित करता है।
- लार्वा फूलों, कलियों और फलियों पर जाला बनाकर अंदर ही रहते हैं और वहीं नुकसान पहुँचाते हैं।

4. फली कीट (*क्लैग्रैला गिब्बोसा, रिप्टोर्टस पेडस्ट्रिस*):

- ये दोनों प्रजातियाँ फली कीट के रूप में जानी जाती हैं।
- वयस्क और निम्फ पौधों के पत्तों, कलियों, तनों और फलियों का रस चूसते हैं।
- हरी फलियों को पकने से पहले ही नुकसान होता है।
- लक्षण फलियों पर सफेद धब्बे, दाने छोटे और सिकुड़े हुए, जिससे उपज घट जाती है।

5. माहूँ (*एफिस क्रैसीवोरा*):

- यह कीट विभिन्न दलहनी फसलों पर पाया जाता है।
- वयस्क और निम्फ पत्तियों, फलियों और ऊपरी कलियों का रस चूसते हैं।
- इनके स्रावित चिपचिपे पदार्थ से कालिमायुक्त फफूंद विकसित होती है।
- यह ककड़ी मोज़ेक वायरस (सीएमवी) और बैंडेड मोज़ेक वायरस का वाहक भी है।

6. फूल थ्रिप्स (*मेगालुरोथ्रिप्स डिस्टैलिस*):

- पतले, गहरे भूरे रंग के कीट जो फूलों के भागों को खाते हैं।
- ग्रीष्मकालीन मूँग की फसल के लिए गंभीर खतरा।
- लक्षण फूल खिलने, से पहले झड़ना ऊपरी शाखाओं का लंबा होना, पौधों का झाड़ीदार रूप लेना।
- गंभीर प्रकोप में फलियाँ सिकुड़े हुए दानों वाली होती हैं और कभी-कभी पूरी फसल नष्ट हो जाती है।

7. सफेद मक्खी (*बेमिसिया टैबासी*):

- वयस्क और निम्फ पत्तियों का रस चूसते हैं।
- क्षतिग्रस्त पत्तियाँ कपनुमा आकार की, नीचे की ओर मुड़ी हुई और रोगग्रस्त दिखाई देती हैं।
- शहद जैसे पदार्थ के कारण कालिमायुक्त फफूंद विकसित होती है, जिससे प्रकाश संश्लेषण बाधित होता है।
- यह मूंगबीन पीला मोज़ेक वायरस सहित कई वायरल रोगों की वाहक है।

8. पत्ती का कीड़ा (लीफ हॉपर):

- मूँग और अन्य दलहनी फसलों पर प्रभाव डालता है।
- प्रकोप बुवाई के तीसरे सप्ताह से शुरू होकर मई-जून में अधिक होता है।
- लक्षण पत्तियों का किनारों से नीचे की ओर मुड़ना।
- गंभीर संक्रमण से पत्तियाँ सूख जाती हैं और पौधों की वृद्धि व उपज प्रभावित होती है।

9. बिहार हेयरी कैटरपिलर:

- मूँग की पत्तियाँ बड़े पैमाने पर गिरा देता है।
- जूट, सरसों, सूरजमुखी, अरहर और बरसीम को भी संक्रमित करता है।
- वयस्क पतंगा 400-500 अंडे देता है, रंग मलाईदार होता है जिस पर काले निशान होते हैं।
- युवा कैटरपिलर झुंड में रहकर क्लोरोफिल खा जाते हैं।
- पूर्ण विकसित कैटरपिलर पत्तियों, कोमल तनों और शाखाओं को खाते हैं।
- प्रभावित पत्तियाँ सफेद, कागज जैसी और पाउडर जैसी दिखाई देती हैं।

फसल प्रबंधन

1. सांस्कृतिक उपाय

✓ समय पर बुवाई करें ताकि कीटों का प्रकोप कम हो।

✓ फसल चक्र अपनाएँ और मूँग को लगातार एक ही खेत में न बोएँ।

✓ ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें ताकि कीटों के प्यूपा नष्ट हो जाएँ।

✓ खेत में खरपतवार नियंत्रण रखें क्योंकि ये कीटों का आश्रय स्थल होते हैं।

2. यांत्रिक उपाय

✓ कीटग्रस्त पत्तियों और फलियों को तोड़कर नष्ट करें।

✓ फेरोमोन ट्रैप लगाएँ ताकि फलछेदक कीटों की संख्या कम हो।

✓ पीली चिपचिपी पट्टियाँ लगाएँ ताकि सफेद मक्खी और थ्रिप्स नियंत्रित हों।

3. जैविक उपाय

✓ ट्राइकोग्रामा परजीवी कीट का प्रयोग करें, जो फलछेदक के अंडों को नष्ट करता है।

✓ *बैसिलस थुरिंगिएन्सिस* (बीटी) आधारित जैव- कीटनाशक का छिड़काव करें।

✓ नीम तेल 5% या नीम आधारित उत्पाद का प्रयोग करें।

✓ खेत में पक्षियों को आकर्षित करने के लिए "टी" आकार की लकड़ी लगाएँ।

4. रासायनिक उपाय

✓ जस्सिड और थ्रिप्स नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड 17.8 SL का छिड़काव करें।

✓ सफेद मक्खी नियंत्रण हेतु थायोमेथोक्साम 25 WG का प्रयोग करें।

✓ फलछेदक और पत्ती लपेटक नियंत्रण हेतु स्पिनोसैड 45 SC या इंडोक्साकार्ब 14.5 SC का छिड़काव करें।

✓ रसायनों का प्रयोग हमेशा अनुशंसित मात्रा में और विशेषज्ञ की सलाह से करें।

निष्कर्ष

मूँग की खेती में कीट प्रबंधन के लिए समन्वित कीट प्रबंधन (IPM) सबसे प्रभावी तरीका है। इससे न केवल उत्पादन बढ़ता है बल्कि पर्यावरण भी सुरक्षित रहता है। किसानों को चाहिए कि वे सांस्कृतिक, यांत्रिक, जैविक और रासायनिक उपायों का संतुलित प्रयोग करें। इस प्रकार मूँग की खेती लाभकारी और सतत कृषि की दिशा में एक मजबूत कदम साबित होगी।

♣♣♣

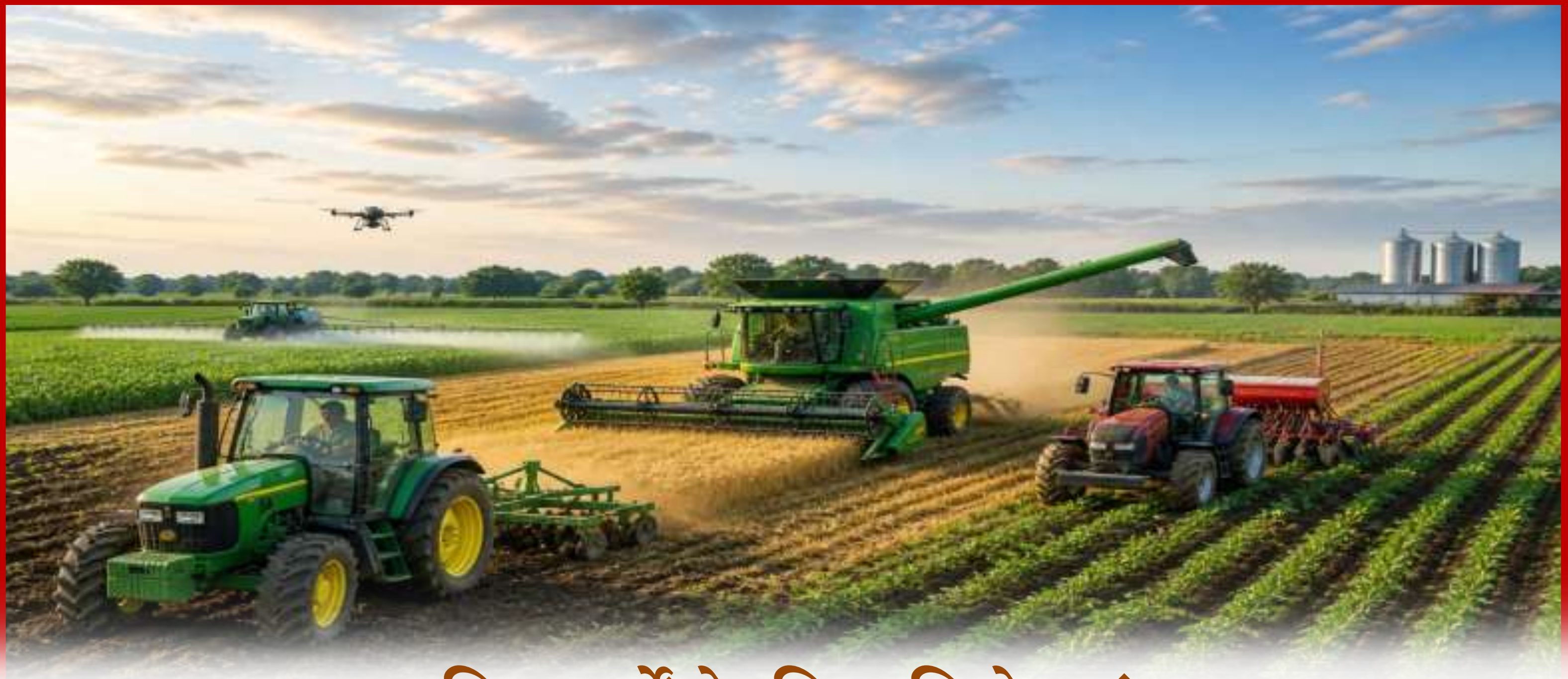

कृषि कार्यों के लिए विशेष यंत्र

डॉ. नरेन्द्र कुमार यादव एवं डॉ. सांवल सिंह मीणा
कृषि यंत्र एवं शक्ति अभियांत्रिकी विभाग, सी. टी. ए. ई. उदयपुर (राज.)

कृषि मशीनरी कृषि या अन्य कृषि में उपयोग की जाने वाली मशीनरी है। हाथ के औजारों और बिजली के औजारों से लेकर ट्रैक्टरों तक कई प्रकार के ऐसे उपकरण हैं प्रकार के कृषि उपकरण हैं जिन्हें वे टो या संचालित करते हैं। जैविक और अजैविक खेती दोनों में विविध प्रकार के उपकरणों का उपयोग किया जाता है। विशेष रूप से मशीनीकृत कृषि के आगमन के बाद से, कृषि कार्य सरल हो गये है।एक फार्म मशीन की सामान्य जीवन प्रत्याशा लगभग 2000 घंटे का उपयोग है। कई मशीनों का इस्तेमाल साल में कुछ घंटों के लिए ही होता है यानी बुवाई/रोपण मशीनरी। डिजाइनर को मशीन के निर्माण की न्यूनतम लागत का लक्ष्य रखना चाहिए। फार्म मशीन काम से आती है, काम मशीनों से नहीं। अधिकांश कृषि मशीनें ज्यादातर असमान या ऊबड़-खाबड़ जमीनों पर गति में विभिन्न कार्य करती हैं। जैसे रोटावेटर, कंबाइन हार्वेस्टर, वर्टिकल कंवायर रीपर, रूट क्रॉप हार्वेस्टर आदि।

परिभाषा

कृषि मशीनरी या कार्यान्वयन को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है की वे यंत्र जिनका उपयोग कृषि उत्पादन की प्रक्रिया में किया जा सकता है। इन उपकरणो का प्रयोग खेतों में फसल उत्पादन तथा पशु पालन के लिए हो सकता है।

कृषि यंत्रीकरण की आवश्यकता:

कृषि मशीनीकरण के सबसे महत्वपूर्ण बिंदुओ में निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है:

- ✓ मानव कठिन परिश्रम को कम करना
- ✓ उत्पादकता बढ़ाना
- ✓ रोपण और कटाई जैसे कृषि कार्यों की समयबद्धता में सुधार करना
- ✓ चरम श्रम मांगों को कम करना आदि।

कृषि मशीनीकरण की अवधारणा

- ❖ कृषि यंत्रीकरण की मुख्य अवधारणा फसल उपज बढ़ाने के लिए कृषि कार्यों को बेहतर तरीके से करने के लिए इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी के सिद्धांतों को लागू करना है।
- ❖ इसमें क्षेत्र संचालन, जल नियंत्रण, सामग्री प्रबंधन, भंडारण और प्रसंस्करण के लिए सभी यांत्रिक सहायता का विकास, अनुप्रयोग और प्रबंधन शामिल है।
- ❖ यांत्रिक सहायता में हाथ के औजार, जानवरों द्वारा खींचे जाने वाले उपकरण, पावर टिलर, ट्रैक्टर, इंजन, इलेक्ट्रिक मोटर, अनाज प्रसंस्करण और ढोने के उपकरण शामिल हैं।

सबसे उन्नत कृषि प्रौद्योगिकियां:

अगले कुछ दशकों में, थकान मुक्त सेल्फ-ड्राइविंग ट्रैक्टर या रोबोट के उपयोग से खेती में क्रांति आने की उम्मीद है जो मनुष्यों द्वारा किए जा रहे समय लेने वाले कार्यों को बहुत कम समय में करेंगे।

ISSN: 3049-2211

मक्का और सोयाबीन जैसी कुछ प्रमुख फसलों की स्थिर कीमतों के बीच प्रमुख कृषि मशीनरी का आविष्कार, नवाचार और बिक्री तेजी से बढ़ रही है। हालांकि, कृषि लागतों को नियंत्रित करने और उत्पादन में वृद्धि की निरंतर आवश्यकता ने अंततः किसानों को इस ओर प्रेरित किया है।

कृषि की आधुनिक तकनीकों को अपनाएं। यह भविष्यवाणी की गई है कि कृषि प्रौद्योगिकियां कृषि आपूर्तिकर्ताओं के लिए $200 बिलियन से अधिक का बाजार अवसर होने जा रही हैं, जिसमें चालक रहित ट्रैक्टरों का मूल्य $45 बिलियन का बाजार है।

कृषि उद्योग में स्वचालन तेजी से बढ़ रहा है क्योंकि खेती के लगभग सभी क्षेत्रों में न्यूनतम भौतिक मानवीय हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। कुछ डेयरियां पहले से ही रोबोटिक दूध देने वाली मशीनों का उपयोग कर रही हैं। लेट्यूस बॉट नामक तकनीक का उपयोग करके, किसान लेट्यूस को स्वचालित रूप से पतला कर सकते हैं। ये सभी दुर्लभ श्रम के परिणामस्वरूप उच्च लागत के कारण हासिल किए गए थे। इसके अलावा, उपकरण मानव श्रम की तुलना में बेहतर काम करता है। कृषि रोबोट सुविधा प्रदान कर रहे हैं कि स्वायत्त स्टीयरिंग प्रवृत्ति जो कि बड़ी कृषि मशीनरी तक सीमित है, इनमें से कुछ रोबोट समूहों या झुंड जैसी कार्रवाई में काम कर सकते हैं। छोटी और हल्की मशीनरी का मुख्य लाभ यह है कि वे मिट्टी की सघनता को बढ़ाते हुए मिट्टी के कटाव को कम करते हैं। इससे प्रति एकड़ खेत की पैदावार में अत्यधिक वृद्धि होती है।

आधुनिक खेती को अधिक उत्पादक बनाने वाली मशीनें

खेती दुनिया के सबसे पुराने और सबसे आवश्यक व्यापारों में से एक है और हाल में, यह उसी महत्व को क़ायम रखते हुए उपकरणो के साथ जारी है। ट्रैक्टर और नई मशीनरी के साथ आधुनिक इंजीनियरिंग ने कृषि उद्योग को दक्षता को बड़े पैमाने पर उत्पादन में स्थानांतरित कर दिया है।

खेती अब छोटे पैमाने पर उत्पादन नहीं है, बल्कि हजारों हेक्टेयर में बड़े पैमाने पर मशीनों के साथ हो सकती है। इस दक्षता वृद्धि से तात्पर्य है कि दुनिया के पास किसी भी व्यक्ति के पास किसी भी समय भोजन की पहुंच हो। आइए एक नज़र डालते हैं 6 आधुनिक मशीनों पर, जिन्होंने दुनिया भर में कृषि कार्यों की दक्षता और उत्पादन में अविश्वसनीय रूप से वृद्धि की है -

1. वीडर पंक्ति में स्वचालित (ऑटमैटिक रो वीडर)

जैसा कि सभी जानते हैं, अच्छी फसल बनाए रखने के लिए निराई करना एक अनिवार्य हिस्सा है। अपने खेतों में फसल को उगाने में खरपतवार और आक्रामक प्रजातियां फसल को ख़राब करती हैं और

स्वचालित रोबोटिक पंक्ति आधारित वीडर

जैतून हारवेस्टर

स्वचालित गाय दूध देने की मशीन

आलू हार्वेस्टर

किसान को भारी नुक़सान झेलना पड़ता हैं।इन से बचाव के लिए कीटनाशक और खरपतवारनाशी आम हैं, लेकिन संभावित रूप से हानिकारक रसायनों का प्रयोग मानवों के भीतर कई छिपे हुए रोग उत्पन कर सकते हैं। नतीजतन, रोबो क्रॉप इन रो वीडर को मूल फसलों को नुकसान पहुंचाने की चिंता किए बिना जल्दी और प्रभावी ढंग से खरपतवार को उखाड़ने के लिए डिज़ाइन किया गया है।

2. जैतून हारवेस्टर

जैतून की कटाई अविश्वसनीय रूप से कठिन होती है क्योंकि इसके छोटे तैलीय फलों को कई श्रमिकों द्वारा श्रमसाध्य प्रक्रिया में हाथ से उखाड़ा जाता है। अब, किसान जैतून की कटाई मशीन का उपयोग करते हैं जो पेड़ को हिलाती है, इस से जैतून पौधे को छोड़ती है, और उन्हें एक केंद्रीकृत स्थान पर इकट्ठा करती है।

3. स्वचालित गाय दूध देने की मशीन

गायें सम्पूर्ण विश्व में सबसे अधिक उपयोग किए जाने वाले पशुधन हैं, मांस से लेकर दूध तक, गाय का उत्पाद दुनिया को चलाने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बड़े पैमाने पर दूध देने के काम के लिए सुबह से लेकर रात तक सैकड़ों मजदूरों का गायों का दूध दुहना संभव नहीं है। फिर भी, श्रमिकों को स्वचालित पंपों को थन से जोड़ने के लिए अभी भी दक्षता में सुधार की आवश्यकता है। इसी वजह से इस स्वचालित गाय का दूध दूहने वाली मशीन का आविष्कार किया गया जो इंसानों को पूरी तरह से इस प्रक्रिया से स्वतंत्र कर देती है।

4. छोटे पैमाने पर आलू हार्वेस्टर

आलू की कटाई के लिए बहुत अधिक खुदाई की आवश्यकता होती है। आलू हार्वेस्टर मशीन आलू के चारों ओर की ज़मीन को जोतती है और उन्हें जमीन से बाहर निकालती है। और दूसरे देशों मे बड़े पैमाने पर आलू की बुवाई होती है तो वहाँ बड़े एच पी के ट्रेक्टर का हार्वेस्टर का उपयोग होता है। गाँवों में छोटे पैमाने पर आलू बोये जाते है इसलिये छोटी का उपयोग होता है।

5. रोबोटिक लेट्यूस हार्वेस्टर

लेट्यूस फसल एक बहुत ही जटिल पत्तेदार हरा पौधा है, और इसके लिए अक्सर सैकड़ों श्रमिकों को दिन भर झुकने और खड़े होने की आवश्यकता होती है। इस दोहराव की गतिविधि से श्रमिक को ज्यादा समस्या होती है। अतः किसानों के लिए कुछ करने की आवश्यकता पड़ी। लेट्यूस हार्वेस्टिंग उद्योग में एक क्रांति की तरह रोबोटिक लेट्यूस हार्वेस्टर उभर कर सामने आता है और फसल लेने में स्वचालन वास्तव में बेहतर रोजगार पैदा कर रहा है।

रोबोटिक लेट्यूस हार्वेस्टर

गाजर हार्वेस्टर और सेपरेटर

6. गाजर हार्वेस्टर और सेपरेटर

आलू और गाजर की कटाई मुश्किल होती है क्योंकि ये फसलें मिट्टी में गहरी होती हैं। गाजर की कटाई मशीन शायद हमारे द्वारा यहां सूचीबद्ध मशीनों में सबसे अधिक मंत्रमुग्ध करने वाली है, और इसका पैमाना बस अचरज भरा है। गाजर की खुदाई करने वाले सैकड़ों मजदूर इस मशीन प्रक्रिया के बारे में बहुत कुछ कह रहे हैं। इसी तकनीकी से दक्षता में वृद्धि के सही मायने में समझे जा सकते है।

निष्कर्ष

स्वस्थ और पौष्टिक भोजन के लिए लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए आज कृषि की उन्नति बहुत महत्वपूर्ण है, जो की बिना यंत्रीकरण के असंभव है। यह किसान को अपनी पारिवारिक जरूरतों को पूरा करने के साथ-साथ अधिक से अधिक लाभ अर्जित करने में भी मदद करेगा। केवल एक मात्र यंत्रीकरण ही हमारे भारत के छोटे से भौगोलिक क्षेत्र में रह रही असीम जनसंख्या की भोजन आपूर्ति का समाधान हो सकता है, अंततः हम विशिष्ठ तकनीकी यंत्र अपनाकर ही कृषि कार्यों को न्यूनतम समय में अच्छी तरह से कर पायेंगे।

♣♣♣

लम्पी त्वचा रोग के प्रति जागरुकता, बचाव व रोकथाम के उपाय

[1]**रोहित कुमावत -** पशु उत्पादन विभाग, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान
[2]**युवराज कुमावत -** यंग प्लांट ब्रीडर, मास्टर्स इन जेनेटिक्स ऐंड प्लांट ब्रीडिंग, जोबनेर, जयपुर, राजस्थान

भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी प्रधानता पशु पालन बिना सम्भव नही है बीते कुछ वर्षों मे पशुओं में एक महामारी फैली है जिसे लम्पी त्वचा रोग कहते हैं जो लाखो पशुओं की मौत का कारण बना हुआ है। पहले यह रोग 2019, 2022 मे त्रासदी कर चुका है फिर यह 2025 मे छोटे बछडी भैंसों मे देखा गया है यह रोग ऐसा है कि जिससे पशुपालको को सर्वाधिक नुक्सान हुआ है हमे इस रोग की रोकथाम करनी होगी व इस रोग के प्रति जागरूक व सतर्क होना होगा तभी हम इस रोग को भारत से सम्पूर्ण तरीके से हटा पाएंगे। इस रोग का बचाव ही उपाय हैं। भारत सरकार के प्रयासों में हम भी सहयोग करें व ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को जागरूक व सतर्क करें।

परिचय

लम्पी त्वचा रोग (Lumpy Skin Disease) जिसे गुठलीदार रोग एवं फ़फ़ोड़ेदार त्वचा रोग भी कहते हैं। यह रोग मुख्यत: वायरस जनित रोग है जो बीमार पशु के स्वस्थ पशु के सम्पर्क में आने से व घरेलू मक्खी, मच्छर आदि चूसने वाले कीटो के द्वारा फैलता है। यह रोग सर्वप्रथम विश्व में जाम्बिया (अफ्रीका) 1929 में पहचान कि गई। उसके बाद इजराइल मे (1989) रोग को देखा गया वहां से यह रोग मध्य एशिया व यूरोपीय देशो के कुछ हिस्सों में रोग को देखा गया।

भारत में प्रथम बार उड़ीसा राज्य में 2019 को पहचान की गई उसके बाद यह रोग महामारी के रूप 2022 भयंकर त्रासदी कर लाखो पशुओं मौत का कारण देश में बना। यह रोग मुख्यतः वर्षा ऋतु जुलाई से सितम्बर के मध्य 2022 में राजस्थान, पंजाब, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि राज्यों में महामारी के रूप में फैला।

रोगजनक की पहचान

लम्पी त्वचा रोग (Lumpy Skin Disease) यह एक वायरल रोग है जो वायरस के द्वारा फैलता है। यह रोग मुख्यत गायों को संक्रमित करता है चाहे वह देशी नस्ल हो या विदेशी नस्ल हो। यह एक सम्पर्क रोग

है जो अस्वस्थ/संक्रमित पशु से स्वस्थ पशु में फैलता है यह रोग Poxiridare group के Genus caprio virus द्वारा त्वचा रोग उत्पन्न करता है। लेकिन अभी इस रोग पर ओर भी शोध होना बाकी है।

रोग पहचान के लक्षण

रोग के चरण	पहचान/लक्षण
प्रथम चरण	✓ तेज बुखार 106-107 °F , 13-14 दिनों तक पशु का खाना-पीना छोड़ना । ✓ पशु के मुंह, गर्दन, आंख, पैरो में सूजन। ✓ Brisket region में Edima होना । ✓ पैरो मे सुजन से पशु खड़ा रहता है, बैठता नहीं है। ✓ आंखों से लगातार पानी गिरता रहता है।
द्वितीय चरण	✓ त्वचा पर गुठलीनुमा गांठे बनना व गांठों में मवाद/पस भरा होना। ✓ पशु की आंखों से लगातार लेक्रीमेशन होना। ✓ पशु के श्वसन तंत्र पर वाइरस का प्रभावी होना जिससे पशु मे न्यूमोनिया हो जाता है। ✓ मुंह से लार गिरती रहती है।
तृतीय चरण	✓ उग्र अवस्था पर गांठों से मवाद बाहर आ जाती है व त्वचा सड़ जाती है ✓ Brisket region में अत्यधिक सुजन व Edima होना। ✓ प्रतिरक्षा तंत्र पूरी तरह कमजोर हो जाता है।

बचाव

- ❖ रोग ग्रसित पशु को सर्वप्रथम Quarentine करें, स्वस्थ पशुओं से अलग करें।
- ❖ संक्रमित पशु के चारा पात्र व पानी पिलाने वाले बर्तनों को अलग ही रखें।
- ❖ गांठ फूट जाने पर पशु को जालीदार नेट के अन्दर रखे जिससे मक्खियों से दूर रखा जा सके व गांठो पर हल्दी + मक्खन को मिलाकर लेप करें।

लम्पी स्किन डिज़ीज़ वैक्सीन

बायोलम्पिवैक्सिन दुनिया की पहली और देश में बनी LSD वैक्सीन है। इसे भारत बायोटेक की सब्सिडियरी कंपनी बायोवेट ने बनाया है। यह LSD वायरस का इस्तेमाल करके बनाई गई एक लाइव-एटेन्यूएटेड DIVA (वैक्सीनेटेड जानवरों से संक्रमित जानवरों में अंतर करना) मार्कर वैक्सीन है। यह एक सिंगल वैक्सीनेशन है जो साल में एक बार सभी उम्र के मवेशियों और भैंसों को दिया जाता है। इसे सेंट्रल ड्रग्स स्टैंडर्ड कंट्रोल ऑर्गनाइज़ेशन (CDSCO) ने मंज़ूरी दी है।

रोकथाम

- ❖ GOAT POX वैक्सीन का स्वस्थ पशु को पहले से ही टीकाकरण करवाये।
- ❖ उग्र स्थिति में चिकित्सक की देख - रेख में ईलाज करवाये।

रोग संचरण

ज़रूरी बातें

- भारत दुनिया का सबसे बड़ा दूध प्रोड्यूसर है, जो हर साल लगभग 210 मिलियन टन दूध प्रोड्यूस करता है। भारत में दुनिया भर में सबसे ज़्यादा मवेशी और भैंस भी हैं।
- सरकारी डेटा के मुताबिक, भारत में LSD के दो बड़े आउटब्रेक हुए हैं, पहला 2019 में और दूसरा 2022 में। इन आउटब्रेक के दौरान लगभग 200,000 मवेशियों की मौत हो गई, और लाखों और मवेशियों ने अपनी दूध देने की क्षमता खो दी।

सारांश

मवेशी डेयरी इंडस्ट्री का एक अहम हिस्सा हैं, जो दुनिया की इकॉनमी में बहुत बड़ा योगदान देते हैं। LSD के बार-बार फैलने से दुनिया भर का पशुधन सेक्टर बुरी तरह प्रभावित हुआ है, जिससे गायों और भैंसों की बड़े पैमाने पर मौत हुई है। जानलेवा होने के अलावा, यह वायरस मवेशियों की कुल प्रोडक्टिविटी को कम करता है, जिससे खेती पर निर्भर देशों को भारी रेवेन्यू का नुकसान होता है।

***

भिण्डी उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक

कृष्णा जाट, विनोद प्रजापत, डा० अशोक चैधरी, डा० रंजना सिरोही, यशपाल चैधरी, सुरभि सिंह

राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुरा -जयपुर

श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (जयपुर)

भिण्डी खरीफ एवं जायद के मौसम में बोयी जाने वाली सब्जी है। कच्चे फलो का उपयोग सब्जी बनाने में किया जाता हैं। इसमें विटामिन ए (88 आई.यू), विटामिन सी (13 मि.ग्राम), पोटेशियम (103 मि.ग्रा.), रेषा (1.2 ग्राम), खनिज लवण जैसे सोडियम (6.9 मि.ग्रा.), लोह तत्व (1.5 मि.ग्रा.) इत्यादि प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। पौधों के तने व जड़ो का उपयोग चीनी एवं गुड़ को साफ करने में किया जाता है। कागज तथा कपड़ा उद्योग में इसके फलों एवं रेशेदार डंठलों का उपयोग किया जाता है। मधुमेह एवं पेचिश आदि बीमारियों में औषधीय उपयोग के रूप में किया जाता है।

जलवायु एवं मृदा:

भिण्डी की खेती मुख्यतः ग्रीष्म एवं वर्षा ऋतु में की जाती है। इसके लिए लम्बे समय तक गर्म मौसम की आवश्यकता पड़ती है। औसत तापक्रम 25-30 डिग्री सेन्टीग्रट होना चाहिए 18 डिग्री सेन्टीग्रट से कम होने पर बीज अंकुरण पर विपरित प्रभाव पडता है ओर अगर दिन का तापमान 42 डिग्री सेन्टीग्रट से अधिक होने पर फूल झड़ने लगते है। अधिक ठण्ड से भी हानिकारक होती है। बलुई दोमट मृदा जिसका पी.एच मान 6 - 7 के मध्य, कार्बनिक जीवाष्मयुक्त, उचित जल निकास वाली मृदा खेती के लिए उपयुक्त रहती है।

खेत की तैयारी:

पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा बाद की 2-3 जुताई देशी हल या हैरो चलाकर खेत को अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा चलायें ताकि खेत में बिखरे ढ़ेले टूट जायें व मिट्टी अच्छी तरह भुरभुरी हो जाए। भूमिगत कीटों जैसे - दीमक आदि की रोकथाम हेतु बुवाई से पूर्व अन्तिम जुताई के समय क्यूनालफास 1.5 प्रतिशत चूर्ण या क्लोरपायरीफास 25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में अच्छी तरह डालकर मिलाना चाहिए।

ISSN: 3049-2211

उन्नत किस्में

पूसा सावनी: फल गहरे हरे रंग के, चिकने 5-6 धारियों युक्त, फल की लम्बाई 10-12 से.मी, फल 50 दिन में बजार में बेचने लायक तथा पीतषिरा मोजेक रोग के लिए प्रतिरोधी किस्म है।

वर्षा उपहार: यह किस्म लेम सेलेक्सन × परभनी क्रान्ति का संकरण है, यह किस्म पीतषिरा मोजेक रोग के प्रति रोधी पौधे की ऊँचाई 90-120 से.मी. तथा पत्तियों का रंग गहरा हरा होता है। वर्षा ऋतु में 47 दिन बाद फूल आने के 7 दिन बाद फल तुड़ाई हेतु तैयार हो जाते है। फल चैथी-पांचवी गांठ में आने लग जाते हैं। यह किस्म पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के लिए उपयुक्त है।

पूसा ए-4: यह किस्म बुवाई के 45 दिन बाद तुड़ाई योग्य हो जाती है। फल की लम्बाई 12-15 से.मी., औसत उपज 120-150 क्विंटल प्रति हैक्टेयर। यह किस्म दोनों मौसम के लिए उपयुक्त है।

अर्का अनामिका: यह किस्म पीतशिरा मोजेक रोग के लिए प्रतिरोधी, पौधे सीधे षाखा युक्त एवं ऊँचाई 120-150 सेमी. होती है। फल मुलायम, गहरे हरे रंग तथा 5-6 धारियों वाले होते है। फलो का डंठल लम्बा होने से तुड़ाई आसानी होती है। औसत उपज 120-150 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

हिसार उन्नत: यह किस्म सलेक्षन-2 ग परभनी क्रान्ति का संकरण है, पौधे की ऊँचाई 100-110 से.मी. तथा 3-4 शाखाओं युक्त होती है। फलो की पहली तुड़ाई 45 दिन बाद षुरू हो जाती है। औसत उपज 120-130 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

पंजाब पद्मनी: फल गहरे हरे रंग, पतले, लम्बे एवं 5 धारियों वाले होते है। फलो की पहली तुड़ाई 60 दिन बाद षुरू हो जाती है। औसत उपज 90-120 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। यह किस्म पीतशिरा मोजेक रोग के लिए प्रतिरोधी तथा दोनों मौसम में बुवाई के लिए उपयुक्त है।

काशी क्रान्ति: फल बुवाई के 45-46 दिन बाद तोडने योग्य, फलों की लम्बाई 8-10 से.मी., औसत उपज 125-140 क्विंटल प्रति हैक्टेयर, यह किस्म पीतशिरा मोजेक रोग के लिए प्रतिरोधी तथा दोनों मौसम में बुवाई के लिए उपयुक्त है।

अन्य किस्में: परभनी क्रान्ति, काशी प्रगति, काशी सातधारी, काशी क्रान्ति, काशी लालिमा (लाल बैंगनी रंग वाले फल), पूसा मखमली, हरभजन भिण्डी, अर्का अभय, गुजरात भिण्डी-1, पूसा संकर भिण्डी-1 आदि।

बीज की मात्रा एवं बुआई

गर्मी में बुवाई फरवरी - मार्च तथा वर्षा ऋतु में बुवाई जून-जुलाई माह में करनी चाहिए। गर्मी की फसल के लिए 18-20 किलोग्राम जबकि वर्षा ऋतु की फसल के लिए 8-10 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती हैं। बीजों को बुवाई से पूर्व कार्बेन्डाजिम नामक फफूँदीनाशक 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें। गर्मी की फसल के लिए बीजों को 24 घण्टे पानी में भिगोने के बाद बुवाई करने से बीजों का जल्दी एवं अच्छा अंकुरण होता है। गर्मी में कतार से कतार के मध्य दूरी 30-45 से.मी तथा पौधें से पौधें के मध्य की दूरी 15-20 से.मी तथा वर्षा ऋतु में कतार से कतार के मध्य दूरी 45-60 से.मी तथा पौधें से पौधें के मध्य की दूरी 20-30 से.मी. रखकर बीजों की बुआई करें।

खाद एवं उर्वरक

मृदा की नमूने की जाँच की अनुसंशा के अनुसार खाद व उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। सामान्य मृदाओं में खेत की तैयारी के समय अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद 150 से 200 क्विंटल प्रति हैक्टेयर की दर से मिलायें। नत्रजन 30 किलोग्राम मात्रा, फास्फोरस तथा पोटाश की मात्रा 30 किलोग्राम प्रति हैक्टर अन्तिम जुताई के समय देना चाहिए। 30 किलोग्राम नत्रजन की बराबर मात्रा दो टुकड़ो में पुष्पन एवं फलन के समय 30 एवं 60 दिन में खड़ी फसल में देवें।

खरपतवार नियन्त्रण

फसल वृद्धि की प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार शीध्र ही निकाल देना चाहिए अन्यथा पैदावार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। बीज बुआई के 30-45 दिन के अन्तराल में 2-3 बार निराई-गुड़ाई करके खरपतवार एवं रोगग्रस्त पौधों निकाल लेना चाहिए।

सिंचाई

गर्मी की फसल हेतु सिंचाई 10-15 दिनों के अन्तराल में देना चाहिए। फसल में पुष्पन एवं फल बनने की अवस्था में सिंचाई पर्याप्त की व्यवस्था होना आवश्यक है। जबकी वर्षा ऋतु में फसल की आवश्यकता के अनुसार ही सिंचाई करें।

उपज

फलों की तुड़ाई फूल खिलने के 5-6 दिनों के पश्चात् करते रहना चाहिए। कोमल एवं रेशे रहित फल तोड़ कर बेचने से बाजार भाव अच्छा मिलता है। गर्मी की फसल से 60-80 क्विंटल तथा वर्षा ऋतु फसल से 100-120 क्विंटल प्रति हैक्टेयर प्राप्त होती है।

कीट प्रबन्धन

हरा तेला, मोयला एवं सफेद मक्खी: ये कीट कोमल पत्तियों एवं तनों से रस चूसते है जिससे पत्तिया पीली होकर गिर जाती है जिसके कारण उपज प्रभावित होती है, तथा ये कीट विषाणु रोगों के वाहक का कार्य करते हैं। इनके नियंत्रण के लिए 20-40 पीले एवं नीले रंग के चिपचीपे बैंड फसल की अधिक ऊँचाई या डाइमिथोएट 30 ई.सी. या मिथाइल

डेमेटान 25 ई.सी. एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर 10-15 दिनों के अन्तराल में छिड़काव करना चाहिए।

फल छेदक: इस कीट की लटे फलो को काफी हानि पहुँचाते है। कीट की इल्लियां फल बनते समय फलों मे छेद कर देती हैं जिसके कारण फल खानें योग्य नहीं रह जाते है। कीट नियंत्रण के लिए फूल आने के तुरन्त बाद ऐसीफेट 75 एस.पी. 1.5 ग्राम या क्यूनालफास 25 ई.सी. 2.0 मिलीलीटर या डेल्टामथ्रिन 2.8 ई.सी. 0.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिडकाव करें।

माइट्स (वरूथी): कीट का आक्रमण जुलाई - अगस्त वाली फसल में अधिक होता है। निम्फ एवं वयस्क दोनों ही पौधों एवं पत्तियो की निचली सतह से रस चूसकर नुकसान पहुँचाते है। संक्रमित टहनियाँ और फल दोनों पीले पड़ जाते है। इसके अधिक आक्रमण से फूल एवं फलों की सख्याँ में कमी हो जाती है। जिसकी वजह से उपज में कमी आती है। इसके नियंत्रण के लिए प्रोपरजाईट 57 ई.सी. या डाइकोफोल 18.5 ई.सी. 1-2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिडकाव करें।

व्याधि प्रबन्धन

चूर्णिल आसिता (छाछया): इस रोग के प्रकोप से पत्तियों पर सफेद चूर्ण युक्त धब्बे बनने लगते हैं। रोगग्रस्त पौधा सफेद चूर्ण से ढका दिखाई देता है। नये फूल नहीं आते हैं, फलों का विकास नहीं होता है। नियंत्रण फसल चक्र अपनाना चाहिए। खडी फसल में रोग का प्रकोप होने पर डायनोकेप 48 ई.सी. 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिडकाव या 20-25 किलोग्राम प्रति हैक्टर गंधक का चुर्ण का भुरकाव करना चाहिए।

जड़ गलन - यह एक फफुंदीजनित रोग है प्रभावित पौधे की जड़े सड़ जाती है। इसके नियंत्रण के लिए बीज कार्बेन्डाजिम नामक फफूँदीनाशक 2 ग्राम प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करना चाहिए। खड़ी फसल में दिखाई पड़ने पर 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिडकाव करना चाहिए।

पीतशिरा मोजेक रोग: यह एक विषाणु जनित रोग है जो सफेद मक्खी द्वारा एक पौधे से दुसरे पौधे में फलता है। इस रोग में पत्तियों की शिरायें तथा फल पीले पड़ जाते है। पत्तियाँ चितकबरी होकर प्यालेनुमा आकार की हो जाती है। जिसके फलस्वरूप पैदावार घट जाती है। इसके नियंत्रण के लिए फूल आने से पहले एवं बाद में मैलाथियान 50 ई.सी. 1.25 मिलीलीटर या डाइमिथोएट 30 ई.सी. 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर 10 - 15 दिनों के अन्तराल में छिडकाव करना चाहिए। या रोगरोधी किस्मों अर्का अनामिका, वर्षा उपहार, पंजाब पद्यमनी, अर्का अभय आदि का चयन करें।

सुत्रकृमी: पौधो की बढ़वार रूक जाती है पत्तियाँ का पीली होकर सुखना, बहुत कम फल लगते है। इसके नियंत्रण के लिए फसल बदल - बदल कर या गर्मी में गहरी जुताई या नीम की खली किलोग्राम प्रति हैक्टर अन्तिम जुताई के समय देना चाहिए।

♣♣♣

जैविक मल्चिंग: सब्जियों का गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के लिए उत्कृष्ट तकनीक

डा० सुनील कुमार मंडल एवं **डा० सुरेन्द्र प्रसाद**
सहायक प्राध्यापक
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर, मधुवनी, बिहार
डॉ० राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

परिचय

देश की कृषि अधिकांश ग्रामीण आबादी की आजीविका का मुख्य आधार है और भारतीय अर्थव्यवस्था में इसका प्रमुख योगदान है। वत्र्तमान समय में हमारे देश की कृषि कई चुनौतियों का सामना कर रही है। यह अब रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, सिंचाई और कई कृषि आदानों के अत्यधिक उपयोग पर निर्भर है, जो मिट्टी, जल और हमारे पर्यावरण की गुणवत्ता को लगातार क्षति और प्रदूषित कर रहे हैं। किसान फसल की पैदावार बढ़ाने के लिए रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग करते हैं, लेकिन उर्वरकों और अन्य कृषि रसायनों की ये अत्यधिक मात्रा हमारी मिट्टी के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। साथ ही, अत्यधिक सिंचाई जल के उपयोग से मृदा अपरदन और लवणता आदि की समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। विशेष रूप से विकासषील देशों में औद्योगिक और घरेलू क्षेत्रों की बढ़ती माँग के कारण कृषि उपयोग के लिए जल की उपलब्धता दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। भारत में, कृषि क्षेत्र जल का प्रमुख (81 प्रतिशत) उपभोक्ता है, जिसमें इसका उपयोग मुख्यतः सिंचाई के लिए किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में, देश के कई हिस्सों में भूजल स्तर ज़मीन की सतह से 0.5 से 1.0 मीटर नीचे गिर गया है। देश के कई क्षेत्रों में सूखे के कारण वर्षा में क्षेत्रीय और स्थानिक भिन्नता देखी जा रही है। उत्पादन लागत बढ़ाए बिना जल उपयोग दक्षता में सुधार करना फसल उत्पादन प्रणाली का एक सतत् लक्ष्य है। इसलिए, खेती में जल का अधिक संसाधनपूर्ण और सुव्यवस्थित उपयोग सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। देश की जनसंख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, जिसके लिए विशाल जनसंख्या के भरण-पोषण हेतु अधिक खाद्यान्न उत्पादन की आवश्यकता है। हालाँकि, इन कारणों से, प्राकृतिक संसाधन (जैसे मिट्टी और पानी) लगातार दबाव में हैं और फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए एक व्यवस्थित और उपयुक्त दृष्टिकोण की आवश्यकता है। उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, मन में कई प्रश्न उठते हैं, जैसे कि अत्यधिक उर्वरकों और रसायनों का उपयोग किए बिना फसल की उत्पादकता कैसे बढ़ाई जाए। मिट्टी के क्षरण को कैसे कम किया जाए। मिट्टी में नमी का संरक्षण कैसे किया जाए? अपने खेतों में खरपतवारों को कैसे नियंत्रित किया जाए? अपनी मिट्टी में पोषक तत्वों को कैसे बढ़ाया जाए? इत्यादि।

मिट्टी, पानी और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण को कम करने और पर्यावरण संरक्षण के लिए, हमें संरक्षण तकनीकों को अपनाना

ISSN: 3049-2211

चाहिए। निरंतर और लगातार पैदावार प्राप्त करने के लिए, मिट्टी, पानी और अन्य प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण अधिक आवश्यक है। फसल की निरंतर उपज मिट्टी और पानी के संरक्षण और संरक्षित खेती को अपनाकर प्राप्त किया जा सकता है। मल्चिंग संरक्षण पद्दतियों में से एक है जिसके द्वारा इन लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। मल्च शब्द जर्मनिक शब्द ''मल्च'' से लिया गया है जिसका अर्थ है सड़ने के लिए नरम, जो स्पष्ट रूप से जैविक पदार्थों और कृषि अपशिष्टों (पुआल, घास की कतरन, खाद और पत्तियों) के उपयोग को संदर्भित करता है, जिसे मल्च के रूप में जमीन पर फैलाया जाता है। मल्च मिट्टी की सतह पर पौधों के अवशेषों या अन्य सामग्री की प्राकृतिक या कृत्रिम रूप से फैली परत होती है। कृषि में मल्चिंग के महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं: नमी संरक्षण, तापमान नियंत्रण, सतही संघनन की रोकथाम, अपवाह और कटाव में कमी, मृदा संरचना में सुधार और खरपतवार नियंत्रण। मृदा सुधार का अर्थ है मिट्टी की संरचना में सुधार, जल धारण क्षमता में वृद्धि, नमी संरक्षण और मिट्टी के जल निकासी की गुणों में सुधार। जैविक मल्च का उपयोग मृदा अपरदन को रोकता है और मृदा तापमान को नियंत्रित करता है, पौधों को पोषक तत्व प्रदान करता है, क्योंकि यह धीरे-धीरे खाद बनाता है, पौधों को पूरे मौसम में पोषण प्रदान करता है और फसलों को भी स्वस्थ रखता है, क्योंकि यह रोगजनकों और कीटों को सीधे तौर पर नियंत्रित करता है, लाभकारी जीवों को बढ़ाता है और प्रदूषकों को निष्क्रिय करता है। यह आर्थिक, सौंदर्यपरक, संचालन में आसानी और निराई-गुड़ाई में भी किसानों को प्रभावित करता है। मल्च का प्रयोग किसी भी वागवानी फसलों के लिए, खासकर सूखे के दौरान, एक जादू की तरह है। इसी प्रकार, यह अर्ध-शुष्क और शुष्क क्षेत्रों में बगीचे या बाग के लिए बहुत उपयोगी है। यह एक विसंवाहक (इन्सुलेटर) के रूप में कार्य करता है जो गर्म दिनों और ठंडी रातों के दौरान मिट्टी के तापमान को ठंडा और नियंत्रित रखता है। यह लाभकारी सूक्ष्मजीवी गतिविधि को बढ़ाता है और रोगों से लड़ने में मदद करता है। यह खेत से नमी के वाष्पीकरण को भी रोकता है। यह मिट्टी की सतह पर सीधे सौर विकिरण और वायु प्रवाह से मिट्टी की नमी को रोकता है, जिसके परिणामस्वरूप मिट्टी की नमी का नुकसान कम होता है। मिट्टी की सतह से नमी का वाष्पीकरण फसल की जल उपयोग क्षमता को बहुत प्रभावित करता है। मिट्टी की सतह से वाष्पीकरण, फसल भूमि के वाष्पीकरण का 25-50 प्रतिशत था। कई शोधकर्ताओं ने बताया है कि कृषि अपशिष्ट जैसे पुआल, खाद, घास की कतरन पत्तियाँ आदि से मल्चिंग करने पर जल धारण क्षमता बढ़ी और मिट्टी का वाष्पीकरण रुका। उन्नत जल उपयोग क्षमता, उत्पादन लागत को कम करने में मदद करेगी। इसके अतिरिक्त, मल्चिंग पद्धतियाँ मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों के साथ मिट्टी के स्वास्थ्य को बहाल करने में भी मदद करती हैं। वर्षा आधारित परिस्थितियों में इसके अनेक प्रभाव से उपज में 50-60 प्रतिशत तक की वृद्धि में योगदान करते हैं। इसके अलावा, गीली घास की परत मिट्टी पर वर्षा की बूंदों और जल अपवाह के प्रभाव को कम करके मृदा अपरदन को कम कर सकती है।

मल्च के प्रकार और उनकी उपयुक्तता

मल्च सामग्री कई प्रकार की होती है जैसे प्राकृतिक, सिंथेटिक, पारंपरिक, अकार्बनिक और जैविक मल्च। लेकिन सामान्यतः इन्हें जैविक मल्च और अकार्बनिक मल्च के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। जैविक मल्च प्रकृति में पाए जाते हैं और अपघटन के कारण मिट्टी की जीवों के द्वारा विघटित हो सकते हैं, जबकि अकार्बनिक मल्च मानव निर्मित पदार्थ या चट्टान जैसी कोई भी चीज़ होती है जिससे मिट्टी के जीव विघटित नहीं कर सकते। जैविक मल्च, अकार्बनिक मल्च से ज्यादा फ़ायदेमंद होती है। जैविक या अकार्बनिक मल्च का चुनाव मुख्य रूप से उपयोगकर्ता पर निर्भर करता है, लेकिन जैविक मल्च का उपयोग करने का अर्थ है खेत में उपलब्ध सामग्री का उपयोग करना और यह विघटित होकर जैविक पदार्थों में विघटित हो सकती है। जैविक मल्च मिट्टी में पोशक तत्व जोड़ता है और मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है। प्लास्टिक शीट की तरह अकार्बनिक मल्व को संभालना आसान होता है और यह अपने टिकाऊपन के कारण एक अच्छा विकल्प लगता है, लेकिन ये पुनर्चक्रण योग्य नहीं होते और पर्यावरण के अनुकूल भी नहीं होते।

जैविक मल्च

जैविक मल्च वे प्राकृतिक मूल की सामग्रियाँ हैं जो प्राकृतिक रूप से विघटित हो सकती हैं, जैसे कृषि अपशिष्ट जिनका उपयोग मल्च के रूप में किया जाता है, जैसे कि छाल के टुकड़े, घास की कतरनें, गेहूँ या धान का भूसा, पौधों के पत्ते, कम्पोस्ट, चावल के छिलके और चूरा आदि। ये समय के साथ सड़ते हैं और मिट्टी की जल धारण क्षमता को बढ़ाते हैं। यह विघटित होने पर मिट्टी को पोशक तत्व भी प्रदान करता है। यह अप्रत्यक्ष रूप से जल उपयोग दक्षता में भी सुधार करता है। मल्च की गई परत मिट्टी की सतह तक प्रकाश के प्रवेश को रोककर खरपतवारों की वृद्धि को रोकती है। खरपतवारों की कम व्यापकता जल उपयोग दक्षता में उल्लेखनीय रूप से सुधार करती है। हालाँकि, जैविक पदार्थों में, विभिन्न प्रकार के विकल्प उपलब्ध हैं, जिनमें से प्रत्येक की विशेषतायें और विभिन्ता बढ़ती परिस्थितियों के लिए उपयुक्तता अलग-अलग होती है। दुनिया भर में मानव, पशुधन और फसलों के द्वारा उत्पादित जैविक अपशिष्ट का कुल उत्पादन लगभग 38 ट्रिलियन मीट्रिक टन है, और भारत में प्रत्येक वर्ष लगभग 600 से 700 मिलियन मीट्रिक टन कृषि

अपशिष्ट (साथ ही 272 मिलियन मीट्रिक टन फसल अवशेष) मौजूद होते हैं, लेकिन अधिकांश अप्रयुक्त रहते हैं। कुछ जैविक मल्चिंग सामग्री, जिनका आमतौर पर उपयोग किया जाता है जो निम्न उल्लेखित है:

1. छाल: ये अच्छी मल्च सामग्री हैं, क्योंकि इनमें अधिक नमी होती है और ये इस नमी को लंबे समय तक बनाए रखते हैं और बढ़ती फसल को नमी प्रदान करने में मदद करते हैं। इसका उपयोग आमतौर पर वनस्पति और भूनिर्माण के लिए किया जाता है, लेकिन इसे सब्जी के खेतों में इस्तेमाल करने से बचना चाहिए, क्योंकि यह अम्लीय होता है। हालाँकि, ये मल्च क्यारियों के बीच के रास्तों को ढकने के लिए उत्कृष्ट हैं। छाल मल्च दो प्रकार की होती है: दृढ़ (कड़ी) लकड़ी और मुलायम लकड़ी।

(क) छाल (कड़ी लकड़ी): कड़ी (दृढ़) लकड़ी की छाल मल्च ग्रामीण इलाकों में पौध रोपण के लिए इस्तेमाल की जाने वाली आम मल्च में से एक है। यह कागज़ और लकड़ी उद्योगों का एक उपोत्पाद है जिसे मल्च के रूप में पुनर्चक्रित किया जा सकता है। कड़ी लकड़ी की छाल में मुलायम लकड़ी की छाल की तुलना में अधिक पोषक तत्व होते हैं, लेकिन ये आसानी से उपलब्ध नहीं होते। इस प्रकार की छालों का पी.एच. मान थोड़ा क्षारीय होता है।

(ख) छाल (मुलायम लकड़ी): मुलायम लकड़ी की छाल, दृढ़ लकड़ी के छाल की तुलना में सड़ने के लिए ज्यादा आसान होती है। इसकी पी.एच. मान अम्लीय होती है। ये छालें विभिन्न आकारों में उपलब्ध होती है जो ग्रामीण इलाकों की कई जरूरतों को पूरा करती हैं। इसे 2-4 इंच की गहराई तक लगाना चाहिए।

2. घास की कतरन: घास की कतरन भारतीय कृषि में सबसे आसानी से और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध मल्चिंग सामग्री में से एक है। यदि खेत में ताज़ी घास की कतरन का उपयोग किया जाए, तो यह आसानी से सड़ जाती है और मिट्टी में नाइट्रोजन का प्रतिशत बढ़ा देती है। विभिन्न प्रकार की घास की कतरनें व्यापक रूप से उपलब्ध हैं, जैसे हरी या ताज़ी और सूखी घास। आमतौर पर, बरसात के मौसम में हरी घास की कतरनों का उपयोग नहीं किया जाता है, क्योंकि इससे उनकी जड़ें विकसित हो सकती हैं जो फसल की वृद्धि के लिए हानिकारक हो सकती हैं। हरी कतरनों का उपयोग करने से गर्मी काफी बढ़ सकती है और पौधों को नुकसान हो सकता है। इसलिए, हमेशा सूखी घास को ही मल्च के रूप में इस्तेमाल करना बेहतर होता है। 2-3 इंच की गहराई तक घास की कतरन का उपयोग करना चाहिए।

3. सुखी पत्तियाँ: पत्तियाँ मिट्टी के लिए लाभदायक होती है और मल्व के रूप में उपयोग करने पर पोषक तत्व प्रदान करती हैं। प्राकृतिक वन क्षेत्रों और जहाँ पेड़ बहुतायत में हैं, वहाँ इसका व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। सुखी पत्तियाँ आसानी से और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। अगर इन्हें कम्पोस्ट किया जाए तो यह बेहतर मल्च बनती हैं। हालांकि, वसंत ऋतु में सूखी पत्तियाँ आसानी से उपलब्ध नहीं होतीं, इसलिए इन्हें सर्दियों में उपयोग की जाने वाली मल्च के रूप में उपयोग किया जाता है। सुखी पत्तियाँ को उड़ने से रोकने के लिए, सूखी पत्तियों की मल्च के ऊपर छोटी शाखाएँ अथवा लकड़ी की छाल रखी जाती हैं। सूखी पत्तियों की मल्चिंग की मोटाई लगभग 3-4 इंच होती है।

4. पुआल: यह मल्चिंग के लिए आदर्ष है, क्योंकि इसे आसानी से खेत में लगाया जा सकता है, यह अपनी जगह पर टिका रहता है और सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करता है, जिसमे कुछ सब्जियों में फल लगते हैं। इसका उपयोग सर्दियों में सुरक्षा के लिए और गर्मियों में सब्जियों के खेतों में मल्च के रूप में किया जाता है। ये मल्च बेहतरीन रोधन (इन्सुलेशन), नमी की गहराई और खरपतवार नियंत्रण प्रदान करते हैं। इसका मुख्य लाभ यह है कि इसमें खरपतवार के बीज नहीं होते। इसके अत्यधिक ज्वलनशील गुणों के कारण, अधिक यातायात वाले क्षेत्रों में पुआल मल्च का उपयोग नहीं किया जाता है। पुआल मल्चिंग की मोटाई लगभग 6-8 इंच होती है।

5. कम्पोस्ट/खाद: कम्पोस्ट एक अच्छा मल्च और मृदा-शोधक है। इसे आसानी से तैयार किया जा सकता है या घर पर विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट पदार्थों जैसे पत्ते, पुआल, घास और पौधों के अवशेषों आदि से कम्पोस्ट बनाया जा सकता है। भारतीय कृषि में कम्पोस्ट की उपलब्धता और उपयोग एक पुरानी प्रथा है। यह मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में सुधार करता है और कार्बन की मात्रा को बढ़ाता है, जिससे मृदा की जल धारण क्षमता में सुधार होता है। कम्पोस्ट मृदा स्वास्थ्य में सुधार के लिए एक अच्छी सामग्री है। इसका उपयोग सब्ज़ियों के खेतों में नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उनमें नाइट्रोजन की मात्रा बहुत अधिक होती है और इसमें खरपतवार के बीज हो सकते हैं। कम्पोस्ट का सबसे अच्छा उपयोग क्यारी तैयार करते समय या मौसम की शुरुआत में 'टॉप ड्रेसिंग' के रूप में किया जाता है। इसका उपयोग कुछ पोशक तत्वों से भरपूर पौधों (गुलाब) में मल्व के रूप में किया जाता है। इसे 3-4 इंच की गहराई पर डालना चाहिए।

6. चूरा: यह उन क्षेत्रों में एक बहुत ही आम प्रकार की मल्व है, जहाँ यह आसानी से उपलब्ध होते है। यह लकड़ी की परिष्करण प्रक्रिया के दौरान पाया जाता है, इसमें पोषक तत्व कम होते हैं और इसमें भूसे की तुलना में केवल आधे पोषक तत्व होते हैं। उच्च कार्बन: नाइट्रोजन अनुपात के कारण, इसका अपघटन बहुत देर से होता है। इसके सड़ने से मिट्टी में नाइट्रोजन की कमी हो जाती है, इसलिए नियमित रूप से उर्वरक डालना

आवश्यक है। इसकी प्रकृति अम्लीय होती है। इसलिए इसे अम्लीय मिट्टी में इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। हालाँकि यह लंबे समय तक नमी बनाए रखता है।

7. अखबार: यह खरपतवार नियंत्रण में मदद करती है और आसानी से उपलब्ध होता है। अखबार की परत थोड़े समय में ही मिट्टी में अपघटित हो जाती है। अखबार प्लास्टिक से बेहतर है, क्योंकि यह अंततः विघटित हो जाता है। अखबार मल्च उन खेतों में बहुत समय और मेहनत बचा सकता है जहाँ पिछले मौसम में खरपतवार पहले ही उग चुके हो और गिरे हुए बीज आने वाले मौसम में अंकुरित होंगे। हालाँकि, तेज़ हवा वाले क्षेत्रों में अखबार मल्च का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। अखबार की दो या अधिक शीटों की संयुक्त शीट का उपयोग किया जाना चाहिए और इसके किनारों को भारी सामग्री जैसे कंकड़, बंजरी आदि से चिपकाया जाना चाहिए, ताकि हवा से न उड़े। आमतौर पर, सब्ज़ियों के खेतों में चमकदार कागज़ के उपयोग से बचना चाहिए। क्योंकि स्याही मिट्टी में रिस सकती है।

कुछ अन्य प्रकार के जैविक मल्च

1. अल्फाल्फा: यह एक उत्कृष्ट मल्चिंग सामग्री है, क्योंकि इसे आमतौर पर बीज निकलने से पहले ही काट लिया जाता है। मल्च के रूप में, यह मिट्टी के लिए बहुत पौष्टिक होता है, क्योंकि इसमें नाइट्रोजन की उच्च मात्रा होती है और यह लंबे समय तक टिकता भी है।

2. समुद्री शैवाल: यदि समुद्री शैवाल को ताज़ा एकत्रित किया जाए तो यह एक उत्कृष्ट मल्च बनाता है और मिट्टी में खनिज प्रदान करता है। समुद्री शैवाल सूखने पर बहुत सिकुड़ जाता है, इसलिए खेत में इसकी एक मोटी परत लगानी चाहिए। खेत में लगाने से पहले, मिट्टी में नमक की मात्रा कम करने के लिए समुद्री शैवाल पर ताजे पानी का छिड़काव करना चाहिए।

3. कोको बीन के छिलके: यह मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए एक उत्कृष्ट मल्चिंग सामग्री है। इसमें नाइट्रोजन, फॉस्फेट और पोटाश होता है। यह अम्लीय प्रकृति का होता हैं और पी.एच. मान 5.8 है। इसकी मीठी गंध और आकर्षक रूप के कारण इसका उपयोग भूदृश्यों में किया जाता है।

4. मक्के के भुट्टे (कुचले हुए): यह एक और असाधारण और सस्ती मल्च सामग्री है। मक्के के भुट्टे की मल्च को रंगकर उसकी सुंदरता बढ़ाई जा सकती है और उसे भूदृश्यों में इस्तेमाल किया जा सकता है।

5. हॉप्स (खर्च किए हुए): यह मल्चिंग सामग्री सस्ते दामों पर उपलब्ध है और स्थानीय ब्रुअरीज से ली जाती है। ये दिखने में अच्छे होते हैं और जल्दी गलते नहीं हैं। इसकी गंध तेज होती है, लेकिन 6-7 महीने या उससे ज्यादा समय के बाद इसका इस्तेमाल करना चाहिए।

6. मशरूम कम्पोस्ट: यह एक जैविक पौध उर्वरक है जो उन क्षेत्रों में उपलब्ध है, जहाँ इसे व्यावसायिक रूप से उगाया जाता है। यह बाजार में खर्च किये हुए मशरूम कम्पोस्ट और मशरूम सब्सटेट के रूप में उपलब्ध होता है। यह काफी सस्ता है। अपने समृद्ध पोषक तत्वों के कारण यह मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है। इस प्रकार की कम्पोस्ट मिट्टी की जलधारण क्षमता को भी बढ़ाती है।

7. मूंगफली के छिलके: मूंगफली प्रसंस्करण क्षेत्रों के पास मिलने वाली यह एक प्रभावी मल्च है। ये जैविक मल्च हैं जिनका उपयोग आमतौर पर खेतों में मल्चिंग सामग्री के रूप में किया जाता है। इसके अलावा, किसान खेत में उपलब्ध अन्य फसल अवशेषों का भी मल्च के रूप में उपयोग करते हैं।

जैविक मल्चिंग के लाभ

मल्च परत अधिकत्तम सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करती है या फिर सूर्य का प्रकाश मिट्टी को गर्म करता है। यह मिट्टी का अधिकत्तम तापमान बनाए रखती है। सौर विकिरण के सीधे प्रवेश से बचने के कारण मिट्टी की सतह से वाष्पीकरण की दर सीमित रहती है। इसलिए, गर्म और शुष्क जलवायु में इसका प्रयोग लाभदायक है। मल्च परत खरपतवारों की वृद्धि को भी रोकती है, क्योंकि यदि मिट्टी को मल्च परत से ढ़क दिया जाए तो प्रकाश मिट्टी की सतह तक नहीं पहुँच पाता। यह तेज़ हवा और सतही अप्रवाह से मिट्टी की सतह को कटाव से भी बचाती है। यह वर्षा जल के प्रवाह की दर को सीमित करती है और इस प्रकार मिट्टी और जल अपवाह को रोकती है। वर्षा जल सतही अपवाह सीधे संपर्क में नहीं आता है और वर्षा जल अपवाह धीमा हो जाता है एवं पानी की अंतःस्यंदन मात्रा बढ़ जाती है, जो पौधों के उपयोग के लिए अधिक उपलब्ध मिट्टी की नमी का संकेत देती है। जैविक मल्च मिट्टी की विशेषताओं में भी सुधार करनी है। यह मिट्टी के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में सुधार करती है। ये मल्च धीरे- धीरे विघटित होते हैं और मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा को बढ़ाते हैं, जिससे मिट्टी को भुरभुरा बनाए रखने में मदद मिलती है। ये कार्बनिक पदार्थ मिट्टी में मौजूद उपयोगी केंचुओं और अन्य सूक्ष्म जीवों का भोजन बन जाते हैं। जैविक मल्व मिट्टी में कार्बन की मात्रा को भी बढ़ाते हैं। यह जड़ों के बेहतर प्रवेश और विकास में मदद करता है और मिट्टी की गहरी परत से पोषक तत्वों को निकालने में मदद करता है। यह फसल के जड़ों की वृद्धि में सुधार करता है, पानी के रिसाव और मिट्टी की जलधारण क्षमता को बढ़ाता है। जैविक मल्च मिट्टी के अधिकांश लाभकारी सूक्ष्मजीवों को आकर्षित

ISSN: 3049-2211

करते हैं जो बदले में अपघटनीय अपशिष्टों पर कार्य करते हैं और पौधों को पोषक तत्वों को प्रदान करने में सहायता करते हैं।

जैविक मल्चिंग की सीमाएँ

कई लाभों के अतिरिक्त इसकी कुछ सीमाएँ भी होती हैं। ये कम जल निकास वाली भूमि में मिट्टी को अत्यधिक नम रख सकते हैं और जड़ क्षेत्र में आक्सीजन को सीमित कर सकते हैं। यदि इसे तने के पास या उसके संपर्क में लगाया जाए, तो फँसी हुई नमी रोगों और कीटों के विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनाती है। कई जैविक मल्च विभिन्न प्रकार के कीटों और उनके प्रजनन स्थल बनते हैं। घास और पुआल जैसे मल्च में बीज होते हैं जो खरपतवार पनप सकते हैं। ये जैविक मल्च आसानी से जैव-अपघटनीय होते हैं और केवल थोड़े समय के लिए ही काम कर सकते हैं।

मल्चिंग सामग्री की चयन के मानदंड

सामग्री की लागत: यदि उपयुक्त मल्चिंग सामग्री कम या बिना किसी लागत के उपलब्ध है, तो मल्चिंग सामग्री नहीं खरीदना चाहिए। स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री का ही उपयोग करना चाहिए।

मल्चिंग के लिए चुनी गई फसल: ऐसी फसल सामग्री से मल्चिंग नहीं करना चाहिए, जिससे उगाई गई फसलों में वायरस या कीट फैलने का खतरा बढ़ जाए। साथ ही, ऐसी मल्चिंग सामग्री का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए जिसमें खरपतवार के बीज हों।

मल्चिंग का उपयोग करने की अवधि

गर्मी के मौसम में हल्के, रंगीन पदार्थ मल्चिंग के लिए फायदेमंद होते हैं, ये गर्मी को परावर्तित करते हैं। शुरुआती वसंत ऋतु में गहरे रंग के पदार्थों का उपयोग, मल्चिंग के लिए फायदेमंद होता है, यह मिट्टी को गर्म करने में मदद करता है, जिससे फसल जल्दी बोई जा सकती है और फसल की वृद्धि तेज होती है।

मल्च लगाने का सबसे उपयुक्त समय एवं विधि

जैविक मल्च का प्रयोग पतझड़ के अंत में, शुरुआती भारी वर्षा के बाद मिट्टी के संतृप्त होने के बाद किया जाना चाहिए; या इसे बसंत के अंत में भी किया जा सकता है, हालाँकि, मिट्टी में नमी बनी रहती है, लेकिन मिट्टी गर्म हो जाती है। बरसात के मौसम की शुरुआत में, मिट्टी नम होती है और अक्सर गर्म हो जाती है, जिससे मिट्टी वाष्प छोड़ती है। अगर हम अभी मोटी मल्च लगाते हैं, तो मिट्टी ठीक से साँस नहीं ले पाती और भाप नहीं निकल पाती, जिससे कई तरह के कीट और रोग लगने की संभावना बढ़ जाती है। मिट्टी और मल्च के बीच संतुलन बनाए रखने और किसी भी प्रकार की बीमारी के होने के जोखिम को कम करने के लिए, मल्च लगाने के बाद, वरसात शुरू होने से पहले 2-3 महीने तक अच्छी तरह से पानी दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, मल्च लगाने का सबसे अच्छा समय बरसात के मौसम के अंत के आसपास होता है। जब मिट्टी में भाप निकल चुकी होती है, लेकिन मिट्टी में अभी भी नमी होती है, जो मल्च को मिट्टी में विघटित होने में मदद करती है। यह नमी मल्चिंग सामग्री के द्वारा बरकरार रखी जाएगी और इसका उपयोग पौधों के लिए कई हफ्तों या महीनों तक किया जा सकेगा। इसके अलावा, मल्च लगाने का सबसे अच्छा समय क्यारी तैयार करने के बाद का होता है। जैविक मल्च लगाने से पहले खेत से खरपतवार हटा देना चाहिए। सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि चुनी गई मल्चिंग सामग्री में खरपतवार के बीज न हों। आमतौर पर, कीटों या रोगों से संक्रमित मल्च सामग्री से बचना चाहिए। अगर हम इन सामग्रियों को लगाते हैं, तो इनसे फसल पर कीड़ों या रोगों के हमले की संभावना बढ़ सकती है। खेत में मल्च का उपयोग करने से पहले सादे कार्डबोर्ड की एक परत या अखवार की 4-6 पन्ने मोटी परत बिछा देना चाहिए। ये लगाई गई कार्डबोर्ड या अखबार की परत वार्षिक खरपतवारों को नियंत्रित करेगी और ये बारहमासी खरपतवारों को कम करने में भी मदद करती है। अगर मल्च सामग्री पतली है, तो इसे और मोटा लगाना चाहिए। आमतौर पर, 3-6 इंच की मल्च परत अधिकांश वार्षिक खरपतवारों को नियंत्रित करती है।

वानस्पतिक वृद्धि पर जैविक मल्चिंग का प्रभाव

जैविक मल्चिंग से फसल की वृद्धि दर में वृद्धि होती है, जैसे कि समय से पहले फूल आना, फल लगना और कटाई की अवधि। साथ ही, इससे टमाटर की फसल में फूलों और फलों की संख्या में भी वृद्धि होती हैं। 4 इंच गेहूँ के भूसे से मल्चिंग किए गए खेतों में पौधों की अधिकतम ऊँचाई और पत्तियों की अधिकतम संख्या देखी गई। घास से मल्चिंग करने पर प्रति पौधे फलों की अधिकतम संख्या देखी गई। केवल ड्रिप सिंचाई की तुलना में, टपक सिंचाई वाली फसल में मल्चिंग के साथ पौधों की वृद्धि और उपज अधिक थी। विभिन्न प्रचालनों के बीच, पुआल मल्च के साथ ड्रिप सिंचाई से फसल की ऊंचाई में सबसे अधिक वृद्धि दर्ज की गई। मूंगफली की फली का उत्पादन (17-24 प्रतिशत) और तने की उपज (16 प्रतिशत) देखी गई। पुआल मल्च में काले या पारदर्शी पॉलीथीन मल्च और बिना मल्च की स्थिति की तुलना में अधिक थी, क्योंकि अनुकूल मिट्टी की नमी और तापमान, पहले अंकुर का विकास, अधिक और पहले फूल की परिपक्व फली को संख्या, कम घनत्व और न्यूनतम खरपतवार वृद्धि थी। चूरा, कचरा और बिना मल्च उपचार के तहत भिंडी के पौधे की पत्तियों की संख्या क्रमशः 43, 36 और 27 थी, और उपचार कचरा और चूरा दोनों के तहत अधिकतम परिधि व्यास 37 मि.मी. था, लेकिन नियंत्रण प्लॉट पर यह केवल 26 मिमी व्यास तक

ISSN: 3049-2211

पहुंच पाया। मल्च उपचार में फलों की उपज लगभग तुलनीय थी। कचरा मल्च में 7.5 टन/हेक्टेयर और चूरा मल्च में 7.6 टन/हेक्टेयर, जबकि नियंत्रण क्षेत्र में 5.2 टन/हेक्टेयर दर्ज किया गया। चूरा, कचरा और बिना उपचार वाली राख का शुष्क पदार्थ क्रमशः 0.25, 0.20 और 0.17 किलोग्राम था।

उत्पादन पर जैविक मल्चिंग का प्रभाव

धान के भूसे से मल्चिंग करने पर आलू की उपज और स्टार्च की मात्रा, बिना मल्चिंग वाले खेत की तुलना में क्रमशः 27.9 प्रतिशत और 18.18 प्रतिशत अधिक रही। टमाटर और भिंडी की उपज, नियंत्रित उपचार की तुलना में भूसे से मल्चिंग (6 टन/हेक्टेयर) करने पर क्रमशः 100 और 200 प्रतिशत बढ़ी। भिंडी का उत्पादन, धूल से मल्चिंग करने की तुलना में भूसे से मल्चिंग करने पर कहीं अधिक रहा। गन्ने के कूड़े से मल्चिंग, गेहूं के भूसे से मल्चिंग, सोयाबीन के भूसे से मल्चिंग और अंतर-संवर्धन क्रिया में अनाज की उपज में नियंत्रण (बिना मल्चिंग) की तुलना में क्रमशः 12.64 प्रतिशत, 9.06 प्रतिशत, 7.46 प्रतिशत और 3.74 प्रतिशत की वृद्धि हुई। ड्रिप और गन्ने के कूड़े से मल्चिंग उपचार से फलों की उपज में 53 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई।

मिट्टी पर मल्चिंग का प्रभाव

मल्च की गई मिट्टी से वाष्पीकरण की शुरुआत, बाद की अवस्था में नंगी मिट्टी की तुलना में थोड़ी अधिक होती है। खेतों में उपलब्ध मिट्टी की नमी भंडारण क्षमता मिट्टी की सरंध्रता, बनावट और संरचना पर निर्भर करती है, और इसे जैविक मल्चिंग की मदद से विकसित किया जा सकता है। मशीनिंग की दर बढ़ने के साथ मिट्टी के नमी की गहराई बढ़ जाती है। मल्च की दर बढ़ने के साथ मिट्टी के नमी की गहराई भी बढ़ जाती है। इन अध्ययनों के आधार पर, पुआल मल्चिंग में कम मात्रा में वर्षा से अधिक मिट्टी में पानी जमा करने की क्षमता होती है। पुआल मल्च उपचार में मिट्टी की नमी का संरक्षण अधिक होता है, जो नियंत्रित विधि की तुलना में लगभग 55 प्रतिशत अधिक है। मल्चिंग के लाभकारी प्रभाव मिट्टी के वातावरण में सुधार के माध्यम् से देखे गए हैं, जिसके परिणामस्वरूप पौधों की स्वस्थ वृद्धि और आलू की अधिक उपज देखी गई। गेहूँ के अवशेष मल्च के प्रयोग से, मिट्टी की 1.5 मीटर गहराई तक उपलब्ध नमी, बंजर मिट्टी की तुलना में 6730 किग्रा/हेक्टेयर की दर से बढ़ी। रबी मौसम में ज्वार में, 15 से.मी., 30 से.मी. और 45 से.मी. गहराई पर बुवाई से कटाई तक कुल मिट्टी की नमी में कमी क्रमशः 9.14 प्रतिशत, 11.33 प्रतिशत और 11.92 प्रतिशत रही। गन्ना के कचरा मल्च, गेहूँ के भूसे की मल्व, सोयाबीन के भूसे की मल्व और नियंत्रण (बिना मल्च) पर अंतर कृषि क्रिया में मिट्टी की नमी में प्रतिशत वृद्धि क्रमश 28.19 प्रतिशत, 17.81 प्रतिशत, 12.26 प्रतिशत और 7.54 प्रतिशत रही। गन्नो के कूड़े की मल्च, गेहूं के भूसे की मल्च, सोयाबीन के भूसे की मल्च, अंतर-संस्कृति संचालन और नियंत्रण (मल्च नहीं) में देखा गया कि औसत मिट्टी का तापमान क्रमशः 19.58^0 से॰ग्रे॰, 20.04^0 से॰ग्रे॰, 20.37^0 से॰ग्रे॰, 20.73^0 से॰ग्रे॰ और 21.33^0 से॰ग्रे॰ था। इसके बजाय, घास की मल्च वाले क्षेत्र में मिट्टी का तापमान सबसे कम दर्ज किया गया है। सफेद प्लास्टिक मल्च उपचार में दर्ज तापमान क्रमशः काले प्लास्टिक मल्च उपचार, बिना मल्च और घास मल्च उपचार की तुलना में 1.77^0 से॰ग्रे॰, 2.48^0 से॰ग्रे॰ और 3.78^0 से॰ग्रे॰, है। दोनों प्लास्टिक मल्च उपचार किसानों या उपयोगकर्ताओं के लिए सुझाए गए हैं, ताकि वे सर्दियों के मौसम में मिट्टी के तापमान को बढ़ाकर गर्म मौसम के सब्जी की फसलों का उत्पादन कर सकें और गर्म मौसम के दौरान मिट्टी के तापमान को कम करने के लिए घास मल्च का उपयोग कर सकें।

खरपतवार प्रबंधन में मल्चिंग की भूमिका

मल्च उपचार के द्वारा कई खरपतवारों के अंकुरण और पोषण को नियंत्रित किया जा सकता है। मल्च मिट्टी की सतह को ढक सकते हैं या एक भौतिक अवरोध की तरह काम करके खरपतवारों के अंकुरण को रोक सकते हैं या अंकुरों के विकास को भौतिक रूप से नियंत्रित कर सकते हैं। रासायनिक और बिना मल्च वाले खेतों की तुलना में पॉलीथीन और पुआल मल्च वाले खेतों में खरपतवार की तीव्रता कम देखी गई है। वैज्ञानिकों ने देखा है कि बैंगन, लोबिया और शकरकंद के खेतों में मल्च और बिना मल्च वाले उपचार से खरपतवार नियंत्रण में काफी अंतर पाया गया है। ड्रिप सिंचाई और गन्ने की कचरा मल्चिंग का संयोजन सबसे अच्छा उपचार है, जिससे लगभग 44 प्रतिशत पानी की बचत होती है और सबसे अधिक सब्जियों का उपज (लगभग 51 मीट्रिक टन/हेक्टेयर) प्राप्त होती है। जिन क्षेत्रों में खरपतवार की तीव्रता अधिक होती है, वहाँ प्लास्टिक मल्च के साथ ड्रिप सिंचाई का उपयोग बेहतर होता है। इस उपचार से खरपतवार की तीव्रता लगभग 95 प्रतिशत कम हो जाती है, फल की उपज लगभग 53 प्रतिशत बढ़ जाती है और बिना मल्चिंग के ड्रिप सिंचाई की तुलना में सामान्य सिंचाई के पानी की लगभग 44 प्रतिशत बचत होती है।

निष्कर्ष

जैविक पदार्थों से मल्चिंग करने से मिट्टी में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ती है, मिट्टी का तापमान अधिकत्तम बना रहता है, मिट्टी की सतह से वाष्पीकरण की दर सीमित रहती है, खरपतवारों की वृद्धि रुकती है और मिट्टी का कटाव भी रुकता है। इससे मिट्टी के भौतिक, रासायनिक

और जैविक सभी गुणों में सुधार होता है। जैविक मल्च आसानी से विघटित हो जाते हैं और मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा को बढ़ाते हैं, जिससे मिट्टी ढीली बनी रहती है। ये कार्बनिक पदार्थ केंचुओं और मृदाजनित सूक्ष्मजीवों की वृद्धि के लिए लाभकारी होते हैं और इन लाभकारी सूक्ष्मजीवों का भोजन भी होते हैं। जैविक मल्च के कुछ लाभकारी गुण भी हैं जैसे यह पर्यावरण के अनुकूल है और मिट्टी में लाभकारी पोषक तत्वों को जोड़ता है। यह मिट्टी की नमी को बनाए रख सकता है और जल र्क उपयोग की दक्षता को बढ़ा सकता है। इससे न केवल उत्पादन बढ़ता है, बल्कि गुणवत्तापूर्ण फलें व सब्जियां भी प्राप्त होते हैं। मृदा और जल संरक्षण के साथ, उपज में भी 50 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि प्राप्त होती है। जैविक मल्च खेतों में आसानी से उपलब्ध होते हैं, ये फसल के अवशेष, पौधों की खाद और अन्य जैविक पदार्थ होते हैं। ये स्सती सामग्री हैं, इसलिए मल्चिंग की लागत किफायती है। जैविक मल्च किसानों के लिए अधिक लाभदायक अवसर प्रदान करता हैं। इसलिए मृदा और जल संहित प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ, फसल उत्पादन में जैविक मल्चिंग सामग्री के उपयोग की व्यापक संभावनाएँ हैं। हालाँकि बेहतर परिणामों के लिए जैविक मल्च लगाने से पहले रोग और कीटों का प्रकोप एवं अन्य नुकसानों के प्रति चैकस रहना चाहिए।

♣♣♣

रागी की वैज्ञानिक खेती

[1]**डॉ. दीपक कुमार-** सहायक प्राध्यापक, कृषि संकाय

[2]**तुलिका पानीग्राही-** सहायक प्राध्यापक, कृषि संकाय

डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्य प्रदेश

फिंगर मिलेट, जिसे रागी, मरुआ या मडुआ भी कहा जाता है, एक महत्वपूर्ण मोटा अनाज है। यह विशेष रूप से अरुणाचल प्रदेश सहित भारत के कई क्षेत्रों में उगाई जाती है। इसकी खेती प्रायः झूम कृषि पद्धति वाले क्षेत्रों में की जाती है। रागी पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण मानव आहार में विशेष स्थान रखती है। रागी मुख्यतः अफ्रीका और एशिया महाद्वीप में उगाई जाने वाली फसल है। इसे विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है, जैसे मडुआ, अफ्रीकन रागी, फिंगर बाजरा तथा लाल बाजरा। रागी की बुवाई के लिए अप्रैल से मई का समय उपयुक्त माना जाता है। यह फसल कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी अच्छी पैदावार देती है तथा प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखती है। रागी के पौधे सामान्यतः 1 से 1.5 मीटर ऊँचे होते हैं। यह पौधा मजबूत जड़ों वाला होता है तथा विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उग सकता है। विश्व में रागी उत्पादन का लगभग 58 प्रतिशत हिस्सा भारत में होता है, जिससे यह स्पष्ट है कि भारत रागी उत्पादन में अग्रणी देशों में शामिल है रागी के दानों में अन्य अनाजों की तुलना में अधिक खनिज तत्व पाए जाते हैं। इसमें फाइबर, कैल्शियम, आयरन तथा फेनोलिक अम्ल प्रचुर मात्रा में होते हैं। रागी में कैल्शियम अधिक होने के कारण यह हड्डियों को मजबूत बनाने में सहायक है। रागी के दानों को पीसकर आटा बनाया जाता है, जिससे रोटी, डबल रोटी, डोसा आदि खाद्य पदार्थ तैयार किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त दानों को उबालकर भी खाया जाता है।

जलवायु

रागी का बीज

रागी एक उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय जलवायु की फसल है, जिसे समुद्र तल से लगभग 2100 मीटर ऊँचाई तक उगाया जा सकता है। यह गर्म जलवायु पसंद करने वाली फसल है। इसके बीजों के अंकुरण के लिए 8–10 डिग्री सेल्सियस तापमान आवश्यक होता है, जबकि पौधों की अच्छी वृद्धि एवं विकास के लिए 26–29 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त माना जाता है। रागी की खेती 500–900 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जाती है। मध्यम वर्षा एवं संतुलित नमी इसकी अच्छी उपज के लिए लाभकारी होती है।

मिट्टी

रागी विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है। यह बलुई दोमट से लेकर उपजाऊ मिट्टी तक अनुकूलन क्षमता रखती है तथा

ISSN: 3049-2211

हल्की क्षारीय मिट्टी को भी सहन कर सकती है। अच्छी जल निकासी वाली जलोढ़, दोमट एवं रेतीली मिट्टी इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम मानी जाती है। रागी की फसल बंजर, पथरीली तथा पहाड़ी क्षेत्रों की मिट्टी में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।

फसल प्रबंधन एवं कृषि क्रियाएँ

रागी की फसल को बुवाई के बाद प्रारंभिक 45 दिनों तक खरपतवार मुक्त रखना अत्यंत आवश्यक है। यदि समय पर खरपतवार नियंत्रण नहीं किया जाए तो उपज में भारी कमी आ सकती है। जहाँ खरपतवार कम हों, वहाँ हाथ से निराई करें। अधिक खरपतवार होने पर अनुशंसित खरपतवारनाशक दवाओं का प्रयोग किया जा सकता है। अंतिम निराई बालियाँ निकलने से पहले कर लेनी चाहिए। रागी की फसल को मिश्रित फसल के रूप में भी उगाया जा सकता है, जिससे खेती की लागत कम होती है। बीज अधिक गहराई में नहीं बोना चाहिए, क्योंकि अधिक गहराई पर बीज अंकुरण कम होता है।

भूमि की तैयारी

पिछली फसल की कटाई के बाद खेत की 1–2 गहरी जुताई करें। खेत से खरपतवार, फसल अवशेष एवं कचरे को हटाकर नष्ट कर दें। वर्षा प्रारंभ होने पर खेत की दोबारा जुताई कर पाटा लगाकर समतल करें, ताकि खेत में पर्याप्त नमी बनी रहे।

बुवाई समय

रागी की बुवाई प्रमाणित बीज से करनी चाहिए। बुवाई से पहले बीज को फफूंदनाशी दवा से उपचारित करें। इसकी बुवाई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई मध्य तक वर्षा होने पर की जाती है। कतारों में बुवाई अधिक उपयुक्त रहती है।

स्पेसिंग एवं बीज दर

रागी की अच्छी पैदावार के लिए उचित दूरी बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। फसल की कतार से कतार दूरी 20 से 25 सेंटीमीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 8 से 10 सेंटीमीटर रखनी चाहिए। इससे पौधों को पर्याप्त प्रकाश, वायु तथा पोषक तत्व मिलते हैं। एक एकड़ भूमि के लिए सामान्यतः 2 से 2.5 किलोग्राम बीज पर्याप्त रहता है।

बीजोपचार

रागी की अच्छी अंकुरण क्षमता एवं रोगों से बचाव के लिए बीजोपचार आवश्यक है। बीज को बुवाई से पहले थिरम @ 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज या एग्रोसान जी.एन. से उपचारित करना चाहिए। इससे बीज जनित रोगों का प्रकोप कम होता है और पौधों की प्रारंभिक वृद्धि अच्छी होती है।

रागी की उन्नत किस्में

7.1 GPU-45: यह जल्दी पकने वाली किस्म है, जो 104–109 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी उपज क्षमता 27–29 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह झुलसा रोग के प्रति प्रतिरोधी है।

चिलिका (OEB-10): यह देर से पकने वाली किस्म है, जो 120–125 दिनों में तैयार होती है। इसकी उपज क्षमता 26–27 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह झुलसा रोग एवं तना छेदक के प्रति सहनशील है।

शुभ्रा (OYT-2): यह सिंचित एवं असिंचित दोनों परिस्थितियों में उगाई जा सकती है। पौधों की ऊँचाई 80–90 सेमी होती है। इसकी उपज क्षमता 21–22 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

भैरवी (BM-9-1): यह मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ क्षेत्रों के लिए उपयुक्त किस्म है। यह भूरे धब्बा रोग एवं तना छेदक के प्रति सहनशील है।

VL-149: यह किस्म 98–102 दिनों में तैयार होती है। इसकी उपज 20–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। यह झुलसा रोग प्रतिरोधी है।

PES-400: यह जल्दी पकने वाली किस्म है, जो 98–102 दिनों में तैयार होती है। इसकी औसत उपज 8 क्विंटल प्रति एकड़ है। यह भुरड़ रोग प्रतिरोधी है।

PES-176: यह 102–105 दिनों में तैयार होती है। इसकी उपज 8–9 क्विंटल प्रति एकड़ है। इसके बीज भूरे रंग के होते हैं और यह भुरड़ रोग प्रतिरोधी है।

KM-65: यह 98–102 दिनों में तैयार होती है। इसकी औसत उपज 8–10 क्विंटल प्रति एकड़ है।

VL-315: यह 105–115 दिनों में तैयार होती है। इसकी औसत उपज 10–11 क्विंटल प्रति एकड़ है। यह गर्दन तोड़ एवं भुरड़ रोग सहनशील है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

रागी की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए मिट्टी परीक्षण के आधार पर खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। असिंचित क्षेत्रों में सामान्यतः 40 किलोग्राम नाइट्रोजन तथा 40 किलोग्राम फास्फोरस प्रति हेक्टेयर देना लाभकारी रहता है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय खेत में देनी चाहिए। शेष नाइट्रोजन की मात्रा निराई-गुड़ाई के बाद खड़ी फसल में टॉप ड्रेसिंग के रूप में दें। अच्छी उपज के लिए 100 क्विंटल सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर खेत में मिलाना लाभकारी होता है। जैविक खाद एवं जैव उर्वरकों का प्रयोग भी उत्पादन बढ़ाने में सहायक होता है।

सिंचाई प्रबंधन

रागी मुख्यतः वर्षा आधारित खरीफ फसल है, इसलिए सामान्य परिस्थितियों में अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता कम होती है। परंतु यदि

लंबे समय तक वर्षा न हो, तो पौधों की अच्छी वृद्धि एवं अधिक उत्पादन हेतु सिंचाई आवश्यक है। विशेष रूप से फूल निकलने एवं दाना भरने की अवस्था में नमी बनाए रखना लाभकारी होता है। खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था हेतु मेंड़ एवं नालियाँ बनानी चाहिए, क्योंकि अधिक जलभराव से फसल प्रभावित हो सकती

सिंचाई की संख्या	सिंचाई का फासला
पहली सिंचाई	बिजाई से तुरंत बाद
दूसरी सिंचाई	बिजाई से 3 दिन बाद
तीसरी सिंचाई	बिजाई से 7 दिन बाद
चौथी सिंचाई	बिजाई से 12 दिन बाद
पांचवी सिंचाई	बिजाई से 18 दिन बाद

रागी में रोग प्रबंधन

रागी की फसल में सामान्यतः रोगों का प्रकोप कम होता है, फिर भी लगातार वर्षा, अधिक नमी तथा प्रतिकूल मौसम की स्थिति में कुछ रोग फसल को नुकसान पहुँचा सकते हैं। इसलिए समय-समय पर खेत का निरीक्षण करते रहना चाहिए तथा आवश्यकता पड़ने पर उचित नियंत्रण उपाय अपनाने चाहिए। रागी में प्रमुख रोग निम्नलिखित हैं:

झुलसा रोग (Blast Disease)

यह रागी का प्रमुख रोग है, जो पत्तियों, तनों एवं बालियों को प्रभावित करता है। संक्रमित पौधों की पत्तियों पर आँख के आकार के धब्बे बन जाते हैं, जिनका मध्य भाग धूसर तथा किनारे भूरे रंग के होते हैं। रोग बढ़ने पर धब्बे आपस में मिलकर पत्तियों को सुखा देते हैं। बालियों पर प्रकोप होने से दाने सूख जाते हैं और उपज घट जाती है।

रोकथाम:

- बुवाई से पहले बीज को कार्बेन्डाजिम या मैंकोजेब @ 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से उपचारित करें।
- रोग दिखने पर कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति लीटर पानी या मैंकोजेब 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- आवश्यकता पड़ने पर 10–12 दिन बाद पुनः छिड़काव करें।

भूरे धब्बे का रोग (Brown Spot)

यह रोग पौधे की सभी अवस्थाओं में लग सकता है। प्रारंभ में पत्तियों पर छोटे भूरे धब्बे बनते हैं, जो बाद में बड़े होकर पत्तियों को सुखा देते हैं। बालियों एवं दानों पर संक्रमण होने से दानों का विकास रुक जाता है।

रोकथाम:

- बीजोपचार अवश्य करें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम या मैंकोजेब का छिड़काव करें।
- आवश्यकता अनुसार 10–12 दिन बाद दोबारा स्प्रे करें।

भुरड़ रोग / नेक ब्लास्ट (Neck Blast)

यह रोग विशेषकर बालियाँ निकलने के समय अधिक नुकसान करता है। बालियों की गर्दन सूख जाती है और दाने नहीं बनते।

नियंत्रण:

- रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें
- कार्बेन्डाजिम @ 500 ग्राम/एकड़ छिड़काव
- फूल निकलते समय 15 दिन के अंतराल पर 2–3 स्प्रे करें

रागी का भुरड़ रोग / नेक ब्लास्ट (Neck Blast)

पत्ती झुलसा (Leaf Blight)

इस रोग में पत्तियाँ पीली होकर सूखने लगती हैं, जिससे प्रकाश संश्लेषण कम हो जाता है।

नियंत्रण:

- संतुलित उर्वरक प्रयोग करें
- संक्रमित पौधों को हटाएँ
- फफूंदनाशी दवा का छिड़काव करें

रागी का पत्ती झुलसा (Leaf Blight)

ISSN: 3049-2211

जड़ सड़न (Root Rot)

अधिक जलभराव एवं खराब जल निकास के कारण जड़ें सड़ जाती हैं और पौधे मुरझा जाते हैं।

नियंत्रण:

- ❖ खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था रखें
- ❖ बीजोपचार करें
- ❖ प्रभावित पौधों को नष्ट करें

भुरड़ रोग

भुरड़ रोग रागी की फसल का एक गंभीर रोग है, जो विशेष रूप से खरीफ ऋतु में अधिक दिखाई देता है। इसके प्रकोप से पौधे सड़े हुए प्रतीत होते हैं तथा फसल में गर्दन तोड़ (Neck Blast) की समस्या भी देखी जा सकती है। यदि यह रोग नर्सरी अवस्था या बालियाँ बनने के समय लग जाए, तो पैदावार में भारी कमी आ सकती है।

रोकथाम:

- ❖ रोग प्रतिरोधक किस्मों का चयन करें।
- ❖ बुवाई से पहले बीज को कार्बेन्डाजिम @ 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।
- ❖ रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम @ 500 ग्राम प्रति एकड़ का छिड़काव करें।
- ❖ दूसरी एवं तीसरी स्प्रे फूल निकलने के समय 15 दिन के अंतराल पर करें।
- ❖ 50% बालियाँ निकलने पर ऑरियोफंगिन घोल 100 ppm का छिड़काव करें।
- ❖ इसके 10 दिन बाद मैंकोजेब @ 400 ग्राम प्रति एकड़ या *Pseudomonas fluorescens* 0.2% का छिड़काव करें।
- ❖ खेत में उचित दूरी, संतुलित पोषण एवं जल निकास बनाए रखें।

रागी का भुरड़ रोग

रागी में कीट प्रबंधन:

रागी की फसल में सामान्यतः कीटों का प्रकोप कम होता है, फिर भी लगातार वर्षा, अधिक नमी तथा प्रतिकूल मौसम में कुछ कीट फसल को नुकसान पहुँचा सकते हैं। समय-समय पर खेत का निरीक्षण करते रहना चाहिए तथा आवश्यकता पड़ने पर उचित नियंत्रण उपाय अपनाने चाहिए। रागी में प्रमुख कीट निम्न प्रकार हैं:

तना छेदक कीट (Stem Borer)

यह कीट पौधों के तनों में छेद कर अंदर से नुकसान पहुँचाता है, जिससे पौधे सूखने लगते हैं।

रोकथाम:

- ❖ प्रभावित पौधों को नष्ट करें।
- ❖ डाइमेथोएट या फॉस्फामिडॉन 1–1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

रागी का तना छेदक कीट (Stem Borer)

बालियों की सूंडी

यह कीट दाना बनने के समय बालियों पर हमला करता है। सूंडी बालियों को खाकर दानों को नुकसान पहुँचाती है, जिससे दाने छोटे और कमजोर बनते हैं।

रोकथाम:

- ❖ खेत की नियमित निगरानी करें।
- ❖ आवश्यकता पड़ने पर अनुशंसित कीटनाशी दवा का छिड़काव करें।

सैनिक एवं कुतरा सुंडी (Cutworm / Armyworm)

यह कीट फसल की प्रारंभिक अवस्था में पौधों के आधार भाग को काट देता है। यह रात में सक्रिय रहता है तथा दिन में मिट्टी की दरारों या पत्थरों के नीचे छिप जाता है।

ISSN: 3049-2211

रोकथाम:

- ट्राइकोग्रामा परजीवी का प्रयोग 3 सप्ताह तक सप्ताह में एक बार करें।
- प्रकोप होने पर मैलाथियान 5% @ 10 किग्रा प्रति एकड़ या क्लोरपायरीफॉस 1.5% @ 250 मि.ली. प्रति एकड़ का प्रयोग करें।
- कटाई के बाद खरपतवार एवं फसल अवशेष नष्ट करें।

रागी का सैनिक एवं कुतरा सुंडी (Cutworm / Armyworm)

चेपा (Aphid)

चेपा रागी की फसल पर किसी भी अवस्था में हमला कर सकता है। यह प्रायः पत्तियों के बीच, कोमल भागों तथा बालियों पर पाया जाता है। यह पौधों का रस चूसकर नुकसान पहुँचाता है, जिससे पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं और पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है। इसके छोटे कीट गोलाकार तथा लाल-भूरे रंग के होते हैं, जबकि वयस्क कीट पीले रंग के होते हैं और उनकी टाँगें हरे रंग की दिखाई देती हैं।

रोकथाम:

- खेत का नियमित निरीक्षण करें।
- प्रकोप दिखाई देने पर मिथाइल डेमेटन 25 EC @ 80 मि.ली. या डाइमेथोएट 30 EC @ 200 मि.ली. प्रति एकड़ को 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- संतुलित उर्वरक प्रबंधन अपनाएँ तथा अधिक नाइट्रोजन के प्रयोग से बचें।

रागी का चेपा (Aphid)

तने का सफेद केंचुआ

यह कीट रागी की फसल के तने के निचले भाग एवं जड़ों पर आक्रमण करता है। इसका लारवा जड़ों को खाकर पौधों को कमजोर बना देता है। गंभीर प्रकोप की स्थिति में पौधे की बीच वाली शाखाएँ सूखने लगती हैं तथा पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। इसका लारवा सफेद दूधिया रंग का होता है और सिर पीले रंग का होता है, जबकि वयस्क कीट गहरे भूरे रंग के होते हैं तथा इनके पंख सफेद दिखाई देते हैं।

रोकथाम:

- खेत का नियमित निरीक्षण करें।
- प्रभावित पौधों को उखाड़कर नष्ट करें।
- प्रकोप दिखाई देने पर कार्बरील 50 WP @ 1 किलोग्राम प्रति एकड़ या डाइमेथोएट 30 EC @ 200 मि.ली. को 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- खेत में जल निकास एवं स्वच्छता बनाए रखें।

रागी का तने का सफेद केंचुआ

बालियों का टिड्डा

यह कीट रागी की फसल में दानों की दूधिया अवस्था के समय अधिक नुकसान पहुँचाता है। यह बालियों के गुच्छों को खाता है तथा दानों को अंदर से खाकर नष्ट कर देता है, जिससे दानों की गुणवत्ता एवं उत्पादन में कमी आती है। इसके अंडे चमकीले सफेद रंग के होते हैं, जिन पर संतरी रंग के बाल दिखाई देते हैं और ये गुच्छों में पाए जाते हैं। इसकी सुंडी भूरे रंग की होती है, जिसका सिर पीला तथा शरीर पर बाल होते हैं। वयस्क कीट भूरे रंग के होते हैं, जिनके अगले पंख रेशेदार तथा पिछले पंख पीले रंग के होते हैं।

रोकथाम:

- कीटों को आकर्षित करने हेतु दिन के समय प्रकाश प्रपंच (लाइट ट्रैप) का प्रयोग करें।
- फूल निकलने के समय 5 फीरोमोन ट्रैप प्रति एकड़ लगाएँ।

- गंभीर प्रकोप होने पर मैलाथियान @ 400 मि.ली. या कार्बरील @ 600 ग्राम को 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- खेत की नियमित निगरानी करते रहें।

रागी के बालियों का टिड्डा

घास के टिड्डे

घास के टिड्डे रागी की फसल की पत्तियों को खाकर नुकसान पहुँचाते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है और उत्पादन में कमी आती है। इसके छोटे कीट सफेद रंग के होते हैं, जिन पर धारियाँ पाई जाती हैं। वयस्क कीट हरे-भूरे रंग के होते हैं तथा उनके शरीर पर भी धारियाँ दिखाई देती हैं।

रोकथाम:

- फसल कटाई के बाद खेत में बचे पौधों के अवशेष हटाकर अच्छी तरह सफाई करें।
- गर्मियों में गहरी जुताई करें, ताकि मिट्टी में छिपे अंडे धूप से नष्ट हो जाएँ।
- शुष्क एवं नमीयुक्त परिस्थितियों में जैविक नियंत्रण हेतु *एंटोमोफ्थोरा ग्रिल्ली* का प्रयोग करें।
- अधिक प्रकोप दिखाई देने पर कार्बरील 50 WP @ 600 ग्राम प्रति एकड़ का छिड़काव करें।
- खेत की नियमित निगरानी करते रहें।

रागी का घास के टिड्डे

पत्ता लपेट सुंडी

यह कीट रागी की फसल में पत्तियों को मोड़कर उनके अंदर रहता है और भीतर से पत्तियों को खाकर नुकसान पहुँचाता है। इसके प्रकोप से पत्तियाँ लंबाई की दिशा में मुड़ जाती हैं तथा उन पर सफेद धब्बे दिखाई देने लगते हैं। इससे प्रकाश संश्लेषण कम होता है और पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है। मादा कीट पत्तियों के दोनों ओर लगभग 200 अंडे देती है। अंडों का रंग सफेद-पीला होता है। इसका लारवा हरे-पीले रंग का होता है, जिसका सिर भूरा या काला होता है। प्यूपा गहरे भूरे रंग का होता है और मुड़ी हुई पत्तियों के अंदर पाया जाता है। वयस्क कीट सफेद-पीले या सुनहरी-पीले रंग के होते हैं।

रोकथाम:

- रागी के साथ अन्य अनाज वाली फसलें न उगाएँ।
- खेत एवं आसपास के क्षेत्र को साफ रखें।
- बुवाई के समय उचित दूरी रखें, अधिक घनत्व न रखें।
- प्रभावित पत्तियों को एकत्र कर खेत से दूर ले जाकर नष्ट करें।
- प्रकोप अधिक होने पर निम्न में से किसी एक दवा का छिड़काव करें:
  - क्लोरपायरीफॉस @ 2.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी
  - क्विनालफॉस @ 2.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी
  - ऐसेफेट @ 1 ग्राम प्रति लीटर पानी
  - कार्बरील @ 1 ग्राम प्रति लीटर पानी
  - कारटाप हाइड्रोक्लोराइड @ 2 ग्राम प्रति लीटर पानी।

रागी का पत्ता लपेट सुंडी

खरपतवार नियंत्रण

रागी की फसल में प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों का नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि शुरुआती 30–45 दिनों में खरपतवार फसल के पोषक तत्व, नमी, प्रकाश एवं स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिससे उपज में कमी आती है। अतः अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए समय पर खरपतवार प्रबंधन करना चाहिए।

ISSN: 3049-2211

1. यांत्रिक एवं हाथ से नियंत्रण

राग़ी की फसल में खरपतवार नियंत्रण हेतु यांत्रिक एवं हाथ से निराई-गुड़ाई एक प्रभावी एवं सुरक्षित उपाय है। पंक्तियों में बोई गई फसल में 2–3 बार गोड़ाई-निराई करनी चाहिए। पहली निराई बुवाई के 15–20 दिन बाद तथा दूसरी निराई 30–35 दिन बाद करना उपयुक्त रहता है। आवश्यकता होने पर एक बार अतिरिक्त हाथ से निराई भी की जा सकती है। समय पर गोड़ाई करने से खरपतवार नष्ट होते हैं, मिट्टी भुरभुरी बनती है तथा पौधों की जड़ों का विकास अच्छा होता है, जिससे फसल की वृद्धि एवं उपज में वृद्धि होती है।

2. रासायनिक नियंत्रण

रागी की फसल में खरपतवारों की प्रभावी रोकथाम हेतु उपयुक्त शाकनाशियों का प्रयोग किया जा सकता है। अंकुरण पूर्व नियंत्रण के लिए बुवाई के तुरंत बाद Oxyfluorfen @ 1.25 किलोग्राम प्रति एकड़ का छिड़काव किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त Isoproturon @ 400 ग्राम प्रति एकड़ का भी प्रयोग लाभकारी रहता है। अंकुरण पश्चात खरपतवार नियंत्रण हेतु बुवाई के 20–25 दिन बाद 2,4-D Sodium Salt @ 250 ग्राम प्रति एकड़ का छिड़काव किया जा सकता है। शाकनाशी के प्रयोग के समय कुछ सावधानियाँ रखना आवश्यक है। छिड़काव करते समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए तथा केवल अनुशंसित मात्रा का ही प्रयोग करना चाहिए। तेज हवा चलने की स्थिति में छिड़काव नहीं करना चाहिए। साथ ही, सुरक्षात्मक कपड़े, दस्ताने एवं मास्क का उपयोग अवश्य करें। समुचित खरपतवार नियंत्रण से रागी की फसल स्वस्थ रहती है तथा उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

क. अंकुरण पूर्व (Pre-emergence):

अंकुरण पूर्व खरपतवार नियंत्रण हेतु बुवाई के तुरंत बाद Oxyfluorfen @ 1.25 किलोग्राम प्रति एकड़ का छिड़काव किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त Isoproturon @ 400 ग्राम प्रति एकड़ का प्रयोग भी प्रभावी रहता है।

ख. अंकुरण पश्चात (Post-emergence)

अंकुरण पश्चात खरपतवार नियंत्रण के लिए बुवाई के 20–25 दिन बाद 2,4-D Sodium Salt @ 250 ग्राम प्रति एकड़ का छिड़काव करना लाभकारी होता है।

सावधानियाँ

शाकनाशियों के छिड़काव के समय खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है। केवल अनुशंसित मात्रा का ही प्रयोग करें तथा अधिक मात्रा के उपयोग से बचें। तेज हवा चलने की स्थिति में छिड़काव नहीं करना चाहिए, क्योंकि दवा अन्य फसलों पर जा सकती है। छिड़काव करते समय सुरक्षात्मक कपड़े एवं मास्क का उपयोग अवश्य करें। समुचित खरपतवार नियंत्रण से रागी की फसल स्वस्थ रहती है तथा उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

फसल की कटाई एवं मड़ाई

रागी की फसल बुवाई या रोपाई के लगभग 110 से 120 दिन बाद कटाई के लिए तैयार हो जाती है। जब बालियां पूर्ण रूप से पक जाएँ और दाने कठोर हो जाएँ, तब कटाई करनी चाहिए। पहले बालियों (सिरों) को पौधों से काटकर अलग कर लें। कटाई के बाद इन्हें खेत में एकत्रित करके कुछ दिनों तक धूप में सुखाना चाहिए। दाने अच्छी तरह सूख जाने पर थ्रेसर या मशीन की सहायता से दानों को अलग कर साफ कर बोरो में भरकर सुरक्षित भंडारण करें।

पैदावार एवं लाभ

रागी की उन्नत किस्मों से औसतन 20–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त होती है। उचित बाजार मूल्य मिलने पर किसान एक हेक्टेयर क्षेत्र से अच्छा लाभ अर्जित कर सकता है। रागी की मांग पोषक अनाज के रूप में लगातार बढ़ रही है, जिससे इसका आर्थिक महत्व भी बढ़ता जा रहा है। वर्तमान में इसका बाजार भाव लगभग ₹2700 प्रति क्विंटल के आसपास पाया जाता है। इस हिसाब से किसान एक हेक्टेयर क्षेत्र से लगभग ₹54,000 से ₹67,500 तक सकल आय प्राप्त कर सकता है, तथा औसतन ₹60,000 तक की कमाई आसानी से कर लेता है।

निष्कर्ष:

रागी कम लागत, कम पानी, कम जोखिम तथा अधिक पोषण वाली महत्वपूर्ण फसल है। वैज्ञानिक पद्धति से खेती करने पर यह वर्षा आधारित क्षेत्रों, पहाड़ी क्षेत्रों तथा लघु किसानों के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो सकती है। भविष्य में पोषण सुरक्षा एवं जलवायु परिवर्तन की परिस्थितियों में रागी का महत्व और अधिक बढ़ेगा।

डिजिटल प्रौद्योगिकी के माध्यम से मधुमक्खी पालन का आधुनिकीकरणः ग्रामीण भारत के लिए एक टिकाऊ आय मॉडल

हेमराज द्विवेदी- कृषि विज्ञान केन्द्र, सतना, **दीप्ति दुबे-** कृषि विज्ञान केन्द्र, मंडला
डा० शशि गौर- कृषि विज्ञान केन्द्र, कटनी, **सत्यम-** कृषि विज्ञान केन्द्र, सतना

वर्तमान समय में चूँकि कुल कृषि योग्य भूमि घट रही है, जिसके कारण कृषि के विकास के लिए फसल, सब्जियां और फलों के भरपूर उत्पादन के साथ-साथ अन्य व्यवसाय करने की भी आवष्यकता है जिससे अच्छी आय प्राप्त की जा सके। मधुमक्खी पालन एक ऐसा ही व्यवसाय है, जो वर्षों से मानव जाति को लाभान्वित कर रहा है। भारत में मधुमक्खी पालन एक महत्वपूर्ण कृषि आधारित गतिविधि है, जो शहद उत्पादन के साथ-साथ फसलों के परागण द्वारा कृषि उत्पादकता बढ़ाने में भी सहायक है। यह एक कम खर्चीला घरेलू उद्योग है, जो रोजगार तथा आय दोनों बढ़ाने की क्षमता रखता है। यह एक ऐसा रोजगार है, जिसे समाज के प्रत्येक वर्ग के लोग अपनाकर लाभान्वित हो सकते हैं।

इसके बावजूद अधिकांश मधुमक्खी पालकों को जलवायु परिवर्तन, रोग, तकनीकी जानकारी की कमी और बाजार में बिचैलियों के कारण अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता। स्मार्टफोन, इंटरनेट, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और डिजिटल मार्केटिंग जैसे आधुनिक डिजिटल साधनों के माध्यम से मधुमक्खी पालन को अधिक वैज्ञानिक, लाभकारी और पारदर्शी बनाया जा सकता है। यह लेख दर्शाता है कि कैसे सेंसर, मोबाइल एप्लिकेशन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और ऑनलाइन विपणन प्लेटफॉर्म मधुमक्खी पालकों की आय बढ़ाने और जोखिम कम करने में सहायक बन सकते हैं।

परिचय

भारतीय कृषि प्रणाली में मधुमक्खी पालन एक ऐसा सहायक व्यवसाय है जो कम लागत में अधिक लाभ प्रदान कर सकता है। मधुमक्खियाँ केवल शहद ही नहीं बनातीं, बल्कि सरसों, सब्जियों, फलों और दलहनों जैसी फसलों के परागण के माध्यम से उनकी पैदावार में 20 से 40 प्रतिशत तक की वृद्धि करती हैं।

इसके बावजूद, मधुमक्खी पालक आज भी पारंपरिक तरीकों पर निर्भर हैं। मौसम की अनिश्चितता, रोगों की पहचान में देरी और शहद की बिक्री में बिचैलियों की भूमिका उनके लाभ को सीमित कर देती है। डिजिटल तकनीक इन समस्याओं को दूर कर सकती है और मधुमक्खी पालन को एक आधुनिक उद्यम में बदल सकती है।

पारंपरिक मधुमक्खी पालन की समस्याएँ

जलवायु और पर्यावरणीय जोखिम

मधुमक्खी पालन सीधे तौर पर प्राकृतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। मधुमक्खी पालन में जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय

ISSN: 3049-2211

असंतुलन सबसे बड़ा जोखिम होता हैं। मधुमक्खियों के जीवन चक्र और शहद उत्पादन के लिए छत्ते के भीतर तापमान और आर्द्रता का संतुलन अत्यंत आवश्यक है। अत्यधिक गर्मी की स्थिति में छत्ते का आंतरिक तापमान बढ़ जाता है, जिससे मधुमक्खियों को शहद संग्रह के बजाय तापमान नियंत्रण में अधिक ऊर्जा लगानी पड़ती है। इसी प्रकार अत्यधिक ठंड या लंबे समय तक वर्षा होने पर फूलों की उपलब्धता घट जाती है, जिससे अमृत और पराग की कमी उत्पन्न होती है।

असामयिक वर्षा, सूखा या तापमान में तीव्र उतार-चढ़ाव का प्रभाव न केवल मधुमक्खियों के स्वास्थ्य पर पड़ता है, बल्कि फसलों के फूलने के समय में भी परिवर्तन होता है, जिससे परागण चक्र प्रभावित होता है। इसके अतिरिक्त, पर्यावरण प्रदूषण और रासायनिक कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग मधुमक्खियों की प्रतिरोधक क्षमता को कमजोर करता है। कई बार आसपास के खेतों में छिड़के गए कीटनाशक मधुमक्खियों की मृत्यु का कारण बनते हैं या उन्हें दिशा भ्रमित कर देते हैं। वन क्षेत्र में कमी और जैव विविधता में गिरावट भी मधुमक्खियों के लिए भोजन स्रोतों को सीमित कर रही है। इस प्रकार, जलवायु और पर्यावरणीय जोखिम मधुमक्खी पालन की स्थिरता के लिए गंभीर चुनौती प्रस्तुत करते हैं, जिनका समाधान वैज्ञानिक प्रबंधन, अनुकूलन रणनीतियों और पर्यावरण-संवेदनशील कृषि पद्धतियों के माध्यम से ही संभव है।

रोग और कीट

मधुमक्खी पालन में रोग और कीट सबसे गंभीर जोखिमों में से एक हैं, क्योंकि ये सीधे कॉलोनी की जीवित रहने की क्षमता और शहद उत्पादन को प्रभावित करते हैं। वरोआ माइट जैसे बाह्य परजीवी मधुमक्खियों के शरीर से पोषण चूसते हैं और वायरस के प्रसार को बढ़ावा देते हैं, जिससे पूरी कॉलोनी कमजोर हो सकती है। नोसिमा जैसे सूक्ष्मजीवी रोग पाचन तंत्र को प्रभावित करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप मधुमक्खियों की कार्यक्षमता घट जाती है और मृत्यु दर बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त, फंगल और बैक्टीरियल संक्रमण ब्रूड(लार्वा अवस्था) को नष्ट कर सकते हैं, जिससे नई मधुमक्खियों का विकास रुक जाता है। पारंपरिक प्रणाली में रोगों की पहचान प्रायः दृश्य लक्षणों के आधार पर की जाती है, जो अक्सर तब स्पष्ट होते हैं जब संक्रमण काफी फैल चुका होता है। समय पर निदान और उपचार के अभाव में पूरा छत्ता नष्ट हो सकता है, जिससे आर्थिक हानि गंभीर रूप ले लेती है। कीटनाशकों का अनियंत्रित उपयोग भी मधुमक्खियों के लिए विषाक्त प्रभाव उत्पन्न करता है, जिससे उनकी प्रतिरोधक क्षमता कम होती है। इस प्रकार, रोग और कीट नियंत्रण के लिए वैज्ञानिक निगरानी, नियमित निरीक्षण और संतुलित प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा मधुमक्खी पालन की स्थिरता और लाभप्रदता दोनों प्रभावित हो सकती हैं।

प्रबंधन की कठिनाई

मधुमक्खी पालन एक अत्यंत संवेदनशील कृषि गतिविधि है, जिसमें थोड़ी सी भी प्रबंधन त्रुटि से पूरी कॉलोनी नष्ट हो सकती है। पारंपरिक मधुमक्खी पालन प्रणाली में छत्तों की निगरानी, मधुमक्खियों की स्वास्थ्य-स्थिति, भोजन उपलब्धता और पर्यावरणीय संतुलन मुख्यतः अनुभव और अनुमान पर आधारित होता है, जिसके कारण उत्पादन में अनिश्चितता और जोखिम अधिक बना रहता है।

मधुमक्खी पालन में सबसे बड़ी समस्या यह है कि मधुमक्खियों की स्थिति का सही आकलन बिना छत्ता खोले संभव नहीं होता। पारंपरिक तरीके में मधुमक्खी पालक को हर 7 से 10 दिन में प्रत्येक छत्ता खोलकर उसकी जांच करनी पड़ती है। इस प्रक्रिया में मधुमक्खियों का प्राकृतिक वातावरण बाधित होता है। क्योंकि जब छत्ता खोला जाता है, तो अंदर का तापमान, आर्द्रता और अंधकार अचानक बदल जाता है, जिससे मधुमक्खियां तनावग्रस्त हो जाती हैं। तनाव की स्थिति में वे शहद बनाने के बजाय रक्षा और पलायन पर अधिक ध्यान देने लगती हैं, जिससे उत्पादन घट जाता है। साथ ही परंपरागत प्रणाली में एक अन्य समस्या यह है कि रानी मधुमक्खी की स्थिति क्या है, इसका पता बहुत देर से चलता है। यदि रानी कमजोर हो जाए या मर जाए तो पूरा छत्ता धीरे-धीरे निष्क्रिय हो जाता है और इससे पूरे सीजन का उत्पादन समाप्त हो सकता है।

इस प्रकार, पारंपरिक मधुमक्खी पालन में प्रबंधन की कठिनाई केवल श्रम की नहीं बल्कि सूचना, समय और नियंत्रण की भी है।

विपणन की समस्या

मधुमक्खी पालन में उत्पादन की तुलना में विपणन अधिक जटिल और चुनौतीपूर्ण क्षेत्र है। अधिकांश छोटे और मध्यम स्तर के मधुमक्खी पालक अपने शहद को स्थानीय व्यापारियों या बिचैलियों को थोक दर पर बेच देते हैं, क्योंकि उनके पास प्रत्यक्ष बाजार तक पहुँच, ब्रांडिंग की जानकारी या पैकेजिंग की सुविधा नहीं होती। परिणामस्वरूप, उत्पादक को वास्तविक बाजार मूल्य का केवल एक सीमित हिस्सा ही प्राप्त होता है, जबकि प्रसंस्करण, पैकेजिंग और खुदरा बिक्री से जुड़ा लाभ श्रृंखला के अन्य भागीदारों के पास चला जाता है। इसके अतिरिक्त, गुणवत्ता परीक्षण और प्रमाणन की औपचारिक व्यवस्था का अभाव भी विपणन को प्रभावित करता है, क्योंकि बिना मानकीकरण के शहद को प्रीमियम उत्पाद के रूप में स्थापित करना कठिन होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में भंडारण और परिवहन की सीमित सुविधाएँ भी समय पर बिक्री में बाधा

ISSN: 3049-2211

उत्पन्न करती हैं, जिससे कभी-कभी उत्पाद कम कीमत पर बेचने की मजबूरी बन जाती है। उपभोक्ता जागरूकता बढ़ने के साथ शुद्धता और स्रोत की जानकारी की मांग भी बढ़ी है, परंतु अधिकांश उत्पादक ट्रेसिबिलिटी और पारदर्शिता सुनिश्चित करने में सक्षम नहीं होते। इस प्रकार, विपणन तंत्र की संरचनात्मक कमियों, सूचना असमानता और बाजार नियंत्रण की सीमाओं के कारण मधुमक्खी पालकों की आय उनकी वास्तविक क्षमता से कम रह जाती है।

डिजिटल प्रौद्योगिकी की भूमिका

स्मार्ट सेंसर और इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT)

मधुमक्खी पालन में स्मार्ट सेंसर और इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) तकनीक पारंपरिक प्रबंधन प्रणाली को डेटा-आधारित और वैज्ञानिक दृष्टिकोण में परिवर्तित करती है। प्वज् आधारित स्मार्ट छत्तों में तापमान, आर्द्रता, ध्वनि और वजन मापने वाले सूक्ष्म सेंसर लगाए जाते हैं, जो निरंतर रूप से जानकारी एकत्र कर मोबाइल एप्लिकेशन या ऑनलाइन डैशबोर्ड पर भेजते हैं। इस प्रणाली के माध्यम से मधुमक्खी पालक को छत्ता खोले बिना ही उसकी आंतरिक स्थिति की वास्तविक समय में जानकारी मिल जाती है। उदाहरणतः यदि छत्ते का तापमान सामान्य सीमा से अधिक हो जाता है या आर्द्रता असंतुलित हो जाती है, तो तुरंत चेतावनी संदेश प्राप्त होता है, जिससे समय रहते सुधारात्मक कदम उठाए जा सकते हैं। इसी प्रकार वजन सेंसर से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शहद संग्रह की मात्रा कितनी बढ़ रही है और निकासी का उपयुक्त समय कौन सा है। ध्वनि सेंसर मधुमक्खियों की गतिविधि में होने वाले परिवर्तन का संकेत देते हैं, जिससे संभावित रोग, रानी मधुमक्खी की अनुपस्थिति या कॉलोनी के पलायन की स्थिति का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार प्वज् आधारित प्रणाली निरीक्षण की आवश्यकता को कम करती है, श्रम की बचत करती है और उत्पादन की स्थिरता सुनिश्चित करती है। परिणामस्वरूप मधुमक्खी पालन अधिक सटीक, नियंत्रित और लाभकारी बन सकता है।

source: https://www.mdpi.com/

कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा रोग पहचान

मधुमक्खी पालन में रोगों की समय पर पहचान अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि संक्रमण फैलने के बाद नियंत्रण करना कठिन और महंगा हो जाता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) आधारित तकनीक इस समस्या का प्रभावी समाधान प्रस्तुत करती है। ।प् प्रणाली मशीन लर्निंग और कंप्यूटर विजन तकनीकों का उपयोग करके मधुमक्खियों और ब्रूड की तस्वीरों का विश्लेषण करती है और रोग के प्रारंभिक लक्षणों की पहचान करती है।

स्मार्टफोन कैमरे से ली गई मधुमक्खियों की तस्वीरों को ।प् आधारित ऐप विश्लेषित कर रोगों की पहचान कर सकते हैं। यदि किसी असामान्यता का पता चलता है तो तुरंत चेतावनी संदेश प्राप्त होता है। इससे मधुमक्खी पालक समय रहते दवा या प्रबंधन संबंधी सुधारात्मक कदम उठा सकता है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि यह दृश्य संकेतों के सूक्ष्म अंतर को भी पहचान सकती है, जो सामान्य निरीक्षण में अनदेखे रह जाते हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ उन्नत प्रणालियाँ ध्वनि विश्लेषण का भी उपयोग करती हैं। मधुमक्खियों की भिनभिनाहट के पैटर्न में बदलाव कॉलोनी के तनाव, रानी की अनुपस्थिति या रोग की प्रारंभिक अवस्था का संकेत दे सकता है। ।प् आधारित सॉफ्टवेयर इन ध्वनियों का विश्लेषण कर संभावित जोखिम का अनुमान लगाता है।

इस तकनीक से रोग पहचान की सटीकता बढ़ती है, उपचार में विलंब कम होता है और कॉलोनी हानि में उल्लेखनीय कमी लाई जा सकती है। परिणामस्वरूप मधुमक्खी पालन अधिक सुरक्षित, वैज्ञानिक और आर्थिक रूप से स्थिर बनता है।

मौसम और स्थान आधारित निर्णय

मधुमक्खी पालन में मौसम और भौगोलिक स्थिति का सीधा प्रभाव उत्पादन, परागण क्षमता और कॉलोनी के स्वास्थ्य पर पड़ता है। पारंपरिक रूप से मधुमक्खी पालक अनुभव और स्थानीय जानकारी के आधार पर छत्तों को स्थानांतरित करते रहे हैं, परंतु बदलती जलवायु परिस्थितियों में यह तरीका पर्याप्त नहीं रह गया है। डिजिटल तकनीक के माध्यम से मौसम पूर्वानुमान, उपग्रह आधारित मानचित्रण और भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS) का उपयोग कर अधिक सटीक और वैज्ञानिक निर्णय लिए जा सकते हैं।

डिजिटल मौसम पूर्वानुमान एप्लिकेशन तापमान, वर्षा, आर्द्रता और हवा की गति की अग्रिम जानकारी प्रदान करते हैं। जिससे मधुमक्खी पालक समय रहते छत्तों को सुरक्षित स्थान पर स्थानांतरित कर सकता है। इसी प्रकार, स्थान आधारित विश्लेषण से परागण सेवाओं का भी बेहतर

ISSN: 3049-2211

प्रबंधन संभव होता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी क्षेत्र में सरसों या फलदार फसलें पूर्ण पुष्पावस्था में हैं, तो वहाँ छत्तों को स्थापित करने से शहद उत्पादन और फसल पैदावार दोनों में वृद्धि होती है।

इसके अतिरिक्त, डिजिटल मानचित्रण से कीटनाशक उपयोग वाले क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है, जिससे मधुमक्खियों को विषाक्त प्रभाव से बचाया जा सके।

इस प्रकार, मौसम और स्थान आधारित डिजिटल निर्णय प्रणाली मधुमक्खी पालन को अधिक योजनाबद्ध, जोखिम-नियंत्रित और उत्पादन-केंद्रित बनाती है, जिससे आय की स्थिरता सुनिश्चित की जा सकती है।

डिजिटल मार्केटिंग द्वारा शहद की बिक्री

डिजिटल तकनीक केवल उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि विपणन में भी क्रांति ला रही है।

सोशल मीडिया द्वारा ब्रांड निर्माण

डिजिटल युग में सोशल मीडिया मधुमक्खी पालकों के लिए एक प्रभावी ब्रांड निर्माण मंच के रूप में उभरा है। पारंपरिक रूप से किसान अपना शहद बिना किसी पहचान के थोक व्यापारियों को बेच देते थे, जिससे उनका नाम और उत्पाद की विशिष्टता बाजार में स्थापित नहीं हो पाती थी। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के माध्यम से उत्पादक अपने शहद की उत्पत्ति, उत्पादन प्रक्रिया, शुद्धता और प्राकृतिक स्रोतों की जानकारी सीधे उपभोक्ताओं तक पहुँचा सकते हैं। छत्तों की देखभाल, शहद निष्कर्षण और पैकेजिंग की वास्तविक तस्वीरें तथा वीडियो उपभोक्ता के मन में विश्वास उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार उत्पाद केवल एक सामान्य वस्तु न रहकर एक विश्वसनीय ब्रांड के रूप में स्थापित होता है। नियमित संवाद, ग्राहक प्रतिक्रिया और पारदर्शी जानकारी से दीर्घकालिक ग्राहक संबंध भी विकसित किए जा सकते हैं।

ऑनलाइन बिक्री प्लेटफॉर्म

ऑनलाइन बिक्री प्लेटफॉर्म मधुमक्खी पालकों को स्थानीय बाजार की सीमाओं से बाहर निकालकर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय ग्राहकों तक पहुँचने का अवसर प्रदान करते हैं। ई-कॉमर्स वेबसाइटों और सरकारी डिजिटल पोर्टलों के माध्यम से उत्पादक सीधे उपभोक्ताओं को शहद बेच सकते हैं, जिससे बिचैलियों की भूमिका कम हो जाती है। इन प्लेटफॉर्म पर उत्पाद विवरण, गुणवत्ता प्रमाणन और ग्राहक समीक्षा प्रदर्शित करने की सुविधा होती है, जो उपभोक्ता के निर्णय को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त, ऑनलाइन ऑर्डर प्रणाली से मांग का पूर्वानुमान लगाना आसान होता है, जिससे उत्पादन और आपूर्ति प्रबंधन अधिक सुव्यवस्थित हो सकता है। इस व्यवस्था से उत्पादक को बेहतर मूल्य प्राप्त होने की संभावना बढ़ती है और बाजार विस्तार के नए अवसर खुलते हैं।

डिजिटल भुगतान और पारदर्शिता

डिजिटल भुगतान प्रणाली ने कृषि विपणन को अधिक सुरक्षित और पारदर्शी बनाया है। बैंक ट्रांसफर, यूपीआई और अन्य ऑनलाइन भुगतान माध्यमों के जरिए ग्राहक सीधे उत्पादक के खाते में भुगतान कर सकता है। इससे नकद लेन-देन से जुड़े जोखिम और विलंब समाप्त होते हैं। डिजिटल रिकॉर्ड उपलब्ध होने से लेन-देन का स्पष्ट दस्तावेजीकरण होता है, जो वित्तीय योजना, ऋण सुविधा और कर संबंधी प्रक्रियाओं में सहायक होता है। पारदर्शी भुगतान प्रणाली उपभोक्ता और उत्पादक दोनों के बीच विश्वास को मजबूत करती है तथा आर्थिक अनुशासन को बढ़ावा देती है। परिणामस्वरूप मधुमक्खी पालन व्यवसाय अधिक संगठित, विश्वसनीय और दीर्घकालिक रूप से टिकाऊ बन सकता है।

सामाजिक और आर्थिक प्रभाव

डिजिटल मधुमक्खी पालन से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं जैसे-

- शहद उत्पादन और गुणवत्ता में वृद्धि
- रोगों से होने वाले नुकसान में कमी
- किसानों को बेहतर बाजार मूल्य
- ग्रामीण युवाओं और महिलाओं के लिए रोजगार
- फसलों की उत्पादकता में वृद्धि

निष्कर्ष

मधुमक्खी पालन भारतीय कृषि प्रणाली का एक महत्वपूर्ण सहायक क्षेत्र है, जो कम संसाधनों में उच्च आर्थिक और पारिस्थितिक लाभ प्रदान करने की क्षमता रखता है। यह केवल शहद उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि फसलों के परागण के माध्यम से कृषि उत्पादकता और जैव विविधता को भी सुदृढ़ करता है। फिर भी, पारंपरिक प्रबंधन पद्धतियों, जलवायु अनिश्चितता, रोग प्रकोप और विपणन संरचना की कमजोरियों के कारण इस क्षेत्र की वास्तविक क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पा रहा है।

डिजिटल प्रौद्योगिकी इस स्थिति को बदलने की दिशा में एक व्यावहारिक और प्रभावी साधन सिद्ध हो सकती है। स्मार्ट सेंसर और इंटरनेट ऑफ थिंग्स आधारित छत्ते वास्तविक समय में तापमान, आर्द्रता और उत्पादन की निगरानी संभव बनाते हैं, जिससे जोखिम कम होता है और वैज्ञानिक प्रबंधन को बढ़ावा मिलता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित रोग पहचान प्रणाली प्रारंभिक अवस्था में संक्रमण का पता लगाकर कॉलोनी हानि को कम करती है। मौसम और स्थान आधारित निर्णय

ISSN: 3049-2211

प्रणाली मधुमक्खी पालकों को संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने में सहायता देती है।

उत्पादन सुधार के साथ-साथ डिजिटल मार्केटिंग और ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म मधुमक्खी पालकों को सीधे उपभोक्ता से जोड़ते हैं, जिससे बिचैलियों पर निर्भरता घटती है और उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त होता है। सोशल मीडिया के माध्यम से ब्रांड निर्माण, ऑनलाइन बिक्री और डिजिटल भुगतान प्रणाली पारदर्शिता, विश्वसनीयता और बाजार विस्तार को सुदृढ़ करती है। यह परिवर्तन मधुमक्खी पालन को एक पारंपरिक गतिविधि से आधुनिक कृषि उद्यम में रूपांतरित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

आर्थिक दृष्टि से यह मॉडल ग्रामीण युवाओं और महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर उत्पन्न कर सकता है। पर्यावरणीय दृष्टि से यह जैव विविधता संरक्षण और सतत कृषि प्रणाली को प्रोत्साहित करता है। नीति स्तर पर यदि प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता और तकनीकी पहुंच को मजबूत किया जाए तो डिजिटल मधुमक्खी पालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

अतः यह स्पष्ट है कि मधुमक्खी पालन में डिजिटल प्रौद्योगिकी और डिजिटल विपणन का समन्वय केवल तकनीकी उन्नयन नहीं, बल्कि आय स्थिरता, बाजार न्याय और कृषि सततता की दिशा में एक समग्र रणनीति है। भविष्य में इस क्षेत्र में अनुसंधान, नवाचार और संस्थागत सहयोग को बढ़ावा देकर इसे ग्रामीण विकास के एक स्थायी मॉडल के रूप में स्थापित किया जा सकता है।

♣♣♣

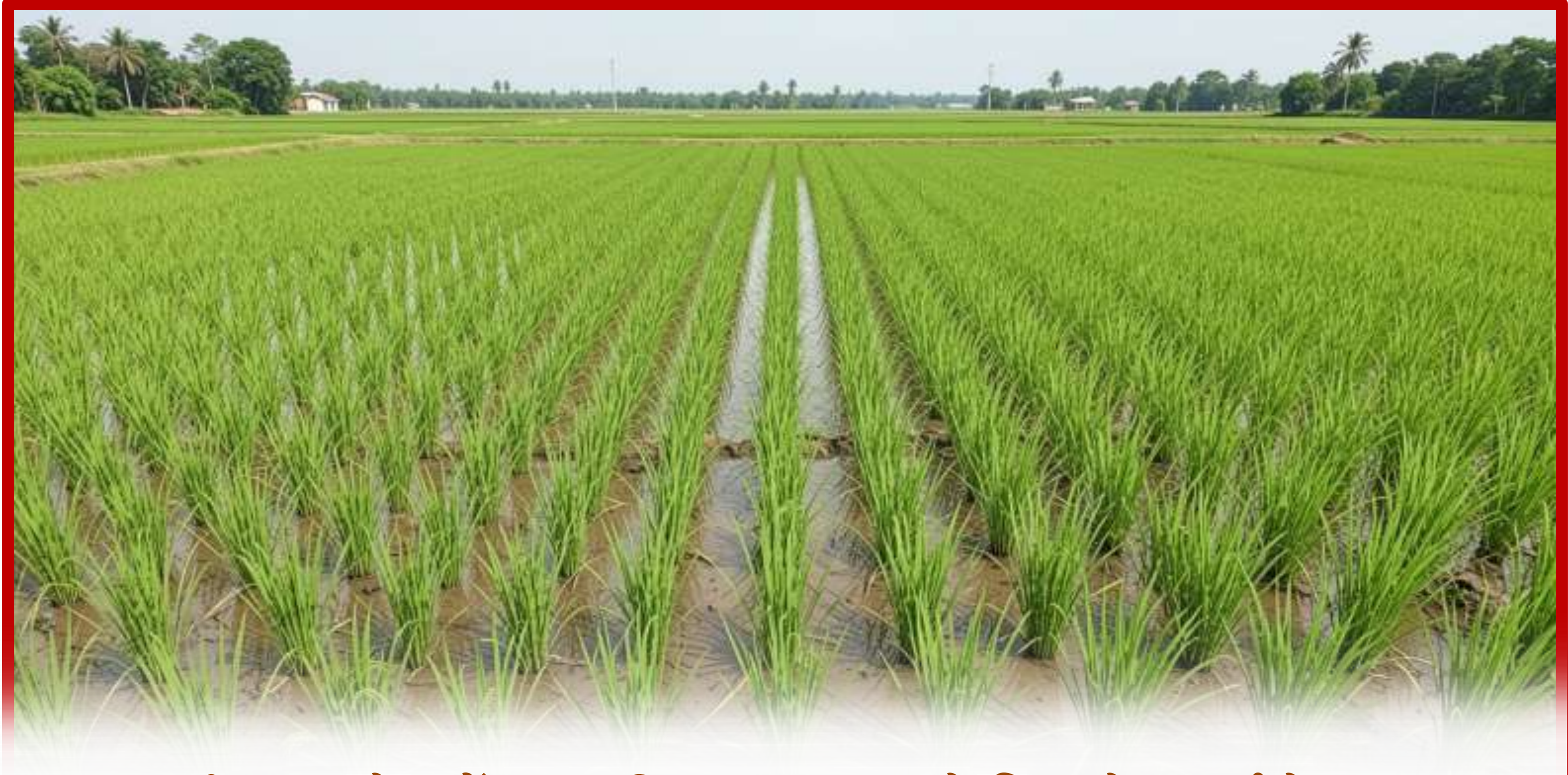

पूर्वी उत्तर प्रदेश में धान की सीधी या जीरो टिल से बुवाई के लाभ

डा0 अभयदीप गौतम- विषय वस्तु विशेषज्ञ (जी0पी0बी0)
डा0 चंदन सिंह- विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
श्री रितेश सिंह गंगवार- विषय वस्तु विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान)
कृषि विज्ञान केन्द्र चन्दौली

पूर्वी उत्तर प्रदेश में धान की सीधी बुवाई (DSR) या जीरो टिल तकनीक से बुवाई पानी और श्रम की बचत के लिए एक बेहतरीन विकल्प है। इस तकनीक से रोपाई एवं लेव की जुताई की लागत में बचत होती है एवं फसल समय से तैयार हो जाती है जिससे अगली फसल की बुवाई उचित समय से करके पूरे फसल प्रणाली की उत्पादकता बढ़ाने में मदद मिलती है। धान की बुवाई मानसून आने के पूर्व (15-20 जून) अवश्य कर लेना चाहिए, ताकि बाद में अधिक नमी या जल जमाव से पौधे प्रभावित न हो। इसके लिए सर्वप्रथम खेत में हल्का पानी देकर उचित नमी आने पर आवश्यकतानुसार हल्की जुताई या बिना जोते जीरो टिल मशीन से बुवाई करनी चाहिए। जुताई यथासंभव हल्की एवं डिस्क हैरो से करनी चाहिए या गैर-चयनित खरपतवारनाशी (ग्लाईफोसेट/पैराक्वाट 2.0-2.5 लीटर/हे० प्रयोग करके खरपतवारो को नियन्त्रित करना चाहिए। खरपतवारनाशी प्रयोग के तीन दिन बाद पर्याप्त नमी होने पर बुवाई करनी चाहिए। जहाँ वर्षा से या पहले ही खेत में पर्याप्त नमी मौजूद हो, वहां आवश्यकतानुसार खरपतवार नियंत्रण हेतु हल्की जुताई या गैर-चयनित खरपतवारनाशी 2.0-2.5 ली. प्रति हे. छिडकाव करके 2-3 दिन बाद मशीन से बुवाई कर देनी चाहिए।

धान की सीधी बुवाई (DSR) या जीरो टिल तकनीक से बुवाई करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए

धान की सीधी बुवाई के लिए जीरो टिल मशीन (Zero Till Machine) का उपयोग करते समय उसे सही ढंग से संशोधित करना बहुत महत्वपूर्ण है। बुवाई से पहले मशीन में खाद (20 किग्रा. डी.ए.पी.) और बीज (20-25 किग्रा. प्रति हे.) की मात्रा, कतारों की दूरी (लगभग 20-22 सेमी) और बीज की गहराई (3-4 सेमी) को समायोजित करें। ज्यादा गहरा होने पर अंकुरण तथा कल्लों की संख्या कम होगी, इससे धान की पैदावार में कमी आएगी। बीज के लिए 08-10 किलो प्रति एकड़ की दर सुनिश्चित करें।

बुवाई के समय सीड ड्रिल की नली पर विशेष ध्यान देना अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह सुनिश्चित करती है कि बीज सही गहराई और दूरी पर गिरें। ब्लॉकेज रोकने के लिए नली को साफ रखें, मुड़ी हुई नली को सीधा करें और बीज दर समान बनाए रखने के लिए कैलिब्रेशन जांचें। यह समान अंकुरण और बेहतर उपज के लिए जरूरी है। बुवाई करते समय पाटा लगाने की आवश्यकता नहीं होती।

सीधी बुवाई जीरो टिलेज धान की खरपतवार एक समस्या के रूप में आते है क्योंकि लेव न होने से इनका अंकुरण सामान्य की अपेक्षा

ISSN: 3049-2211

ज्यादा होता है। बुवाई के पश्चात 48 घंटे के अन्दर पेन्डीमीथिलिन की 3-3.5 लीटर प्रति हे. सक्रिय तत्व की दर से 600 से 800 लीटर पानी में छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव करते समय मिट्टी में पर्याप्त नमी रहनी चाहिए तथा यह समान रूप से सारे खेत में करना चाहिए। ये दवाएं खरपतवारों के जमने के पूर्व ही उन्हें मार देती है। बाद में यदि चैड़ी पत्ती के घास आये तो उन्हें 2, 4-डी 80% सोडियम साल्ट 625 ग्राम प्रति हे० के हिसाब से प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में बाद में उगने वाले खरपतवार निराई करके निकाल देना चाहिए वैसे निचले धनखर खेतों में जल भराव के कारण खरपतवार कम आते है।

धान की सीधी बुवाई (DSR) के लाभः

- पानी की बचत।
- मजदूरी कम लगती है।
- 20 से 30 दिन समय बचता है।
- फसल जल्दी तैयार होती है।

धान की सीधी बुवाई (DSR) में ध्यान रखने वाली बातें:-

- बारिश के तुरंत बाद बुवाई न करें (बीज खराब हो सकते हैं) ।
- समतल खेत जरूरी।
- खरपतवार नियंत्रण सबसे जरूरी।
- धान की नर्सरी उगाने में होने वाला खर्च बचता है।
- इस विधि में जीरो टिल मशीन द्वारा 20-25 किग्रा. बीज प्रति ध् हे. बुवाई के लिए पर्याप्त होता है।
- खेत को जल भराव कर लेव के लिए भारी वर्षा या सिंचाई जल की जरूरत नहीं पड़ती है। नम खेत में बुवाई हो जाती है।
- धान की लेव और रोपनी का खर्च बच जाता है।
- समय से धान की खेती शुरू हो जाती है और समय से खेत खाली होने से रबी फसल की बुवाई सामायिक हो जाती है जिससे उपज अधिक मिलती है।
- लेव करने से खराब हुई भूमि की भौतिक दशा के कारण रबी फसल की उपज घटने की परिस्थिति नहीं आती है। रबी फसल की उपज अच्छी मिलती है।

धान की सीधी बुवाई (DSR) में ध्यान रखने वाली सावधानियां-

धान की जीरो टिलेज से बुवाई करते समय निम्नलिखित सावधनियां अपनानी चाहिए-

- बुवाई के पहले ग्लाइफोसेट की उचित मात्रा को खेत में एक समान छिड़कना चाहिए।
- ग्लाइफोसेट के छिडकाव के दो दिनों के अंदर बरसात होने पर दवा का प्रभाव कम हो जाता है।
- खेत समतल तथा जल निकासयुक्त होना चाहिए अन्यथा धान की बुवाई के तीन दिन के अंदर जल जमाव कम होने पर अंकुरण बुरी तरह प्रभावित होता है।

धान की सीधी बुवाई की दशा में खरपतवार नियंत्रण-

धान की जीरो टिलेज से बुवाई करते समय निम्नलिखित सावधनियां अपनानी चाहिए-

- विसपाइरी बैक सोडियम 10% एस.सी.- 200 मिली. प्रति हे., बुवाई के 20-25 दिन बाद
- पेनाक्ससुलम 1.02 प्रतिशत साइडैलोफाप - ब्यूटाइल 5.1 प्रतिशत ओ.डी. की 2.00-2.25 लीटर 400-500 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 20-25 दिन बाद छिड़काव करना चाहिए।

♣♣♣

उन्नत पैदावार हेतु संशोधित बायोगैस स्लरी का सुदृढ़ीकरण: उत्पादन की दिशा में एक प्रभावी कदम

डा. रितु नागदेव- वैज्ञानिक, आई.सी.ए.आर.–राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, क्षेत्रीय केंद्र, नई दिल्ली

डा. शकील अ. खान- प्रधान वैज्ञानिक, आई.सी.ए.आर.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

डा. रेनू धूपर- एमिटी इंस्टीट्यूट ऑफ एनवायरनमेंटल साइंसेज, एमिटी यूनिवर्सिटी, नोएडा, उत्तर प्रदेश

हरित क्रांति के पश्चात भारतीय कृषि में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग तेजी से बढ़ा। प्रारंभिक दशकों में उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, परंतु दीर्घकाल में असंतुलित पोषण प्रबंधन के कारण मिट्टी की जैविक गुणवत्ता में गिरावट आई। कई क्षेत्रों में "फर्टिलिटी प्लेटो" की स्थिति उत्पन्न हो गई है, जहाँ अधिक उर्वरक देने पर भी उत्पादन में समानुपाती वृद्धि नहीं होती। इसके अतिरिक्त, नाइट्रेट लीचिंग, भूजल प्रदूषण तथा ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन जैसी पर्यावरणीय समस्याएँ भी बढ़ी हैं।

इन परिस्थितियों में जैविक और रासायनिक स्रोतों के समन्वित उपयोग की आवश्यकता अनुभव की गई। इस संदर्भ में बायोगैस स्लरी का ऑर्गेनो–मिनरल संशोधन एक वैज्ञानिक एवं टिकाऊ विकल्प के रूप में उभरकर सामने आया है। बायोगैस स्लरी, पोषक तत्वों, जैविक कार्बन और सूक्ष्मजीव सक्रियता से समृद्ध होती है। रासायनिक उर्वरकों के साथ संतुलित संयोजन में इसका उपयोग मिट्टी की संरचना, एंजाइम गतिविधि, पोषक तत्व चक्रण तथा फसल उत्पादकता को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। आज की आवश्यकता है– ऊर्जा, पोषण और उत्पादन का एकीकृत मॉडल, और बायोगैस स्लरी इस दिशा में एक प्रभावी समाधान है।

बायोगैस स्लरी

बायोगैस संयंत्र में गोबर, फसल अवशेष तथा अन्य जैविक अपशिष्टों को बिना ऑक्सीजन की उपस्थिति में विघटित किया जाता है। इस प्रक्रिया से प्राप्त गैस ऊर्जा के रूप में उपयोग की जाती है और शेष बचा हुआ तरल या अर्धतरल पदार्थ बायोगैस स्लरी कहलाता है। बायोगैस स्लरी एक संतुलित एवं पोषक तत्वों से भरपूर जैविक खाद है, जिसमें सामान्यतः नाइट्रोजन 1.5–2.0%, फास्फोरस 1.0–1.5%, पोटाश 1.0–1.2% तथा सल्फर 0.5–0.8% तक पाया जाता है। इसके साथ ही जिंक, आयरन, मैंगनीज और कॉपर जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व भी मौजूद रहते हैं। एनारोबिक अपघटन प्रक्रिया के कारण इसमें अमोनिकल नाइट्रोजन (NH_4^+-N) की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे पौधों को पोषक तत्व शीघ्र उपलब्ध होते हैं और फसल वृद्धि पर त्वरित सकारात्मक प्रभाव दिखाई देता है। बायोगैस प्रक्रिया के दौरान कार्बनिक पदार्थ आंशिक रूप से विघटित होकर पौधों के लिए अधिक उपलब्ध रूप में परिवर्तित हो जाते हैं, जिससे यह साधारण गोबर की तुलना में अधिक प्रभावी सिद्ध होती है। बायोगैस स्लरी के प्रमुख लाभ नीचे तालिका-1 में दिए गए हैं।

ISSN: 3049-2211

तालिका 1: बायोगैस स्लरी के प्रमुख लाभ

क्रमांक	लाभ	विवरण
1	मिट्टी की उर्वरता में सुधार	बायोगैस स्लरी से मिट्टी में जैविक कार्बन बढ़ता है, जिससे जल धारण क्षमता और संरचना में सुधार होता है। यह लाभकारी सूक्ष्मजीवों तथा यूरिएज व आर्लसुल्फेटेज जैसे एंजाइमों की सक्रियता बढ़ाकर नाइट्रोजन और सल्फर चक्रण को प्रोत्साहित करती है। परिणामस्वरूप पौधों को पोषक तत्वों की बेहतर उपलब्धता होती है।
2	सूक्ष्मजीव गतिविधि में वृद्धि	लाभकारी बैक्टीरिया एवं फफूंद सक्रिय होते हैं, जो पोषक तत्वों को घुलनशील रूप में परिवर्तित कर पौधों के लिए उपलब्ध कराते हैं।
3	पोषक तत्वों की संतुलित आपूर्ति	स्लरी धीरे-धीरे पोषक तत्व छोड़ती है, जिससे फसल को लंबे समय तक निरंतर पोषण मिलता रहता है।
4	रासायनिक उर्वरकों की बचत	संतुलित उपयोग से रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता 20-30% तक कम हो सकती है, जिससे लागत में कमी आती है।
	फसल उत्पादन में वृद्धि	बायोगैस स्लरी के संतुलित उपयोग से धान, गेहूँ तथा अन्य फसलों में उत्पादन और गुणवत्ता में सुधार होता है। दलहनी फसलों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण बढ़ता है, जबकि सब्जी एवं बागवानी फसलों में फल का आकार और स्वाद बेहतर होता है। इसके निरंतर प्रयोग से भूमि की दीर्घकालीन उत्पादकता स्थिर रहती है।
5	पर्यावरण संरक्षण	नाइट्रेट लीचिंग कम होती है, भूमिगत जल प्रदूषण घटता है तथा ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी आती है।

ऑर्गेनो–मिनरल संशोधन सिद्धांत

ऑर्गेनो–मिनरल संशोधन का तात्पर्य जैविक स्रोतों, जैसे बायोगैस स्लरी, को रासायनिक उर्वरकों के साथ संतुलित रूप से मिलाकर उपयोग करने से है। केवल जैविक खाद का प्रयोग धीरे-धीरे प्रभाव दिखाता है, जबकि केवल रासायनिक खाद का अत्यधिक उपयोग मिट्टी की संरचना और जैविक सक्रियता को प्रभावित करता है। दोनों का संयोजन फसल को त्वरित पोषण उपलब्ध कराता है और साथ ही मिट्टी की दीर्घकालीन उर्वरता को बनाए रखता है। इस प्रकार यह पद्धति उत्पादन और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करती है।

उपयोग की वैज्ञानिक विधि

बायोगैस स्लरी का उपयोग सामान्यतः अंतिम जुताई से पहले खेत में समान रूप से फैलाकर मिट्टी में मिला देना चाहिए। अनाज फसलों के लिए 5 से 10 टन प्रति हेक्टेयर की मात्रा उपयुक्त मानी जाती है, जबकि सब्जियों और बागवानी फसलों में इसकी मात्रा थोड़ी अधिक रखी जा सकती है। यदि तरल रूप में उपयोग किया जाए तो इसे सिंचाई जल के साथ भी दिया जा सकता है। ऑर्गेनो–मिनरल मॉडल के अंतर्गत 50 से 75 प्रतिशत अनुशंसित रासायनिक उर्वरक के साथ स्लरी का संयोजन अत्यंत प्रभावी सिद्ध होता है।

आर्थिक लाभ एवं लाभ–लागत अनुपात विश्लेषण

बायोगैस स्लरी के प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है, जिससे उत्पादन लागत घटती है। यदि किसान के पास स्वयं का बायोगैस संयंत्र है तो स्लरी लगभग निःशुल्क उपलब्ध होती है। इससे उर्वरक व्यय में 20 से 30 प्रतिशत तक की बचत संभव है। दीर्घकाल में मिट्टी की उर्वरता सुधरने से उत्पादन स्थिर रहता है और लाभांश बढ़ता है। इस प्रकार यह तकनीक आर्थिक और पर्यावरणीय दोनों दृष्टियों से लाभकारी है।

तालिका 2: पारंपरिक खेती एवं स्लरी आधारित खेती की तुलना

घटक	पारंपरिक खेती	स्लरी आधारित
रासायनिक खाद लागत	अधिक	20–30% कम
मिट्टी सुधार	कम	अधिक
उत्पादन स्थिरता	घटती	दीर्घकालीन

एकीकृत कृषि प्रणाली में बायोगैस आधारित चक्रीय मॉडल का प्रवाह-चित्र

एकीकृत कृषि प्रणाली में भूमिका

बायोगैस स्लरी एकीकृत कृषि प्रणाली का महत्वपूर्ण घटक है। पशुपालन से प्राप्त गोबर बायोगैस संयंत्र में उपयोग होकर ऊर्जा प्रदान करता है, और उससे प्राप्त स्लरी खेत में जैविक खाद के रूप में प्रयुक्त होती है। इस प्रकार ऊर्जा, पोषण और उत्पादन का एक चक्रीय मॉडल विकसित होता है। यह प्रणाली संसाधनों के समुचित उपयोग और अपशिष्ट प्रबंधन का उत्कृष्ट उदाहरण है।

चुनौतियाँ एवं समाधान

स्लरी के भंडारण और उपयोग में सावधानी आवश्यक है। यदि इसे लंबे समय तक खुले में रखा जाए तो नाइट्रोजन का नुकसान हो सकता है। इसलिए इसे शीघ्र खेत में मिलाना चाहिए। दुर्गंध की समस्या को भी तुरंत मिट्टी में मिलाकर कम किया जा सकता है। संतुलित उपयोग के लिए मिट्टी परीक्षण करवाना आवश्यक है, जिससे पोषक तत्वों की सही मात्रा निर्धारित की जा सके।

निष्कर्ष

बायोगैस स्लरी का ऑर्गेनो–मिनरल संशोधन के रूप में उपयोग टिकाऊ कृषि की दिशा में एक प्रभावी कदम है। यह तकनीक मिट्टी स्वास्थ्य को सुधारती है, उत्पादन लागत घटाती है और फसल की गुणवत्ता बढ़ाती है। संतुलित और वैज्ञानिक तरीके से अपनाने पर यह किसानों की आय बढ़ाने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। भविष्य की कृषि को आत्मनिर्भर और टिकाऊ बनाने के लिए बायोगैस स्लरी आधारित पोषण प्रबंधन एक सशक्त विकल्प है।

****

मानव आहार और स्वास्थ्य में रागी का महत्व, फायदे, उपयोग और संभावित नुकसान

डॉ. दीपक कुमार
सहायक प्राध्यापक, कृषि संकाय
डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्य प्रदेश

बेहतर स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए केवल फल और सब्जियाँ ही नहीं, बल्कि पौष्टिक अनाजों का सेवन भी अत्यंत आवश्यक है। अनाज हमारे शरीर को ऊर्जा प्रदान करने के साथ-साथ आवश्यक विटामिन, खनिज तत्व, प्रोटीन और फाइबर भी उपलब्ध कराते हैं। जब पोषक अनाजों की बात होती है, तो रागी का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। रागी एक ऐसा पारंपरिक अनाज है जिसे हमारे पूर्वज सदियों से अपने भोजन में शामिल करते आए हैं। आधुनिक समय में भी इसके पौष्टिक गुणों के कारण यह पुनः लोकप्रिय हो रहा है।

रागी को कई नामों से जाना जाता है जैसे मंडुआ, नाचनी, फिंगर मिलेट आदि। इसका वैज्ञानिक नाम एलुसीन कोरकाना (*Eleusine coracana*) है। यह मुख्यतः भारत, अफ्रीका और एशिया के शुष्क क्षेत्रों में उगाया जाता है। भारत में इसका सर्वाधिक उत्पादन कर्नाटक राज्य में होता है। रागी छोटे आकार का दाना होता है, लेकिन इसमें पोषण का भंडार छिपा होता है। यह कैल्शियम, आयरन, फाइबर, प्रोटीन, मैग्नीशियम, पोटैशियम और एंटीऑक्सीडेंट गुणों से भरपूर होता है।

रागी का मानव आहार में महत्व

रागी एक मोटा अनाज है जिसे आज के समय में "सुपरफूड" के रूप में भी देखा जा रहा है। यह उन लोगों के लिए बहुत उपयोगी है जो संतुलित आहार लेना चाहते हैं। इसमें मौजूद पोषक तत्व शरीर को मजबूती देते हैं, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं और कई बीमारियों से बचाने में सहायक होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रागी लंबे समय से ऊर्जा देने वाले भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। यह अनाज विशेष रूप से बच्चों, महिलाओं, बुजुर्गों, गर्भवती महिलाओं और मेहनत करने वाले लोगों के लिए अत्यंत लाभकारी माना जाता है।

रागी के प्रमुख स्वास्थ्य लाभ

1. कैल्शियम का उत्कृष्ट स्रोत: रागी को कैल्शियम का बहुत अच्छा स्रोत माना जाता है। हड्डियों और दांतों को मजबूत बनाने में कैल्शियम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। रागी का नियमित सेवन बच्चों की हड्डियों के विकास, बुजुर्गों में हड्डियों की कमजोरी तथा महिलाओं में ऑस्टियोपोरोसिस जैसी समस्याओं से बचाव में सहायक हो सकता है।

2. आयरन से भरपूर: रागी में पर्याप्त मात्रा में आयरन पाया जाता है, जो रक्त निर्माण में सहायक होता है। इसके सेवन से एनीमिया की समस्या में लाभ मिल सकता है। गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली माताओं के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी है।

3. मधुमेह में लाभकारी: रागी का ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम होता है, जिससे यह रक्त शर्करा को तेजी से नहीं बढ़ाता। इसमें मौजूद फाइबर और मैग्नीशियम इंसुलिन क्रिया को बेहतर बनाने में मदद करते हैं। इसलिए यह मधुमेह रोगियों के लिए उपयोगी अनाज माना जाता है।

4. पाचन शक्ति बढ़ाता है: रागी में घुलनशील और अघुलनशील दोनों प्रकार का फाइबर होता है, जो पाचन तंत्र को स्वस्थ रखने में सहायक है।

इसके सेवन से कब्ज, गैस और अपच जैसी समस्याओं में राहत मिल सकती है।

5. वजन नियंत्रित करने में सहायक: रागी लंबे समय तक पेट भरा हुआ महसूस कराता है। इसमें ट्रिप्टोफैन नामक अमीनो अम्ल पाया जाता है, जो भूख को नियंत्रित करने में सहायक होता है। इसलिए वजन कम करने वाले लोग इसे अपने आहार में शामिल कर सकते हैं।

6. ग्लूटेन मुक्त अनाज: जिन लोगों को गेहूं या ग्लूटेन से एलर्जी होती है, उनके लिए रागी एक बेहतरीन विकल्प है। यह प्राकृतिक रूप से ग्लूटेन फ्री है।

7. हृदय स्वास्थ्य के लिए उपयोगी: रागी में मैगनीशियम, फाइबर और पोटैशियम पाया जाता है, जो रक्तचाप को नियंत्रित करने और खराब कोलेस्ट्रॉल कम करने में सहायक हो सकते हैं। इससे हृदय रोगों का जोखिम कम हो सकता है।

8. त्वचा के लिए लाभकारी: रागी में एंटीऑक्सीडेंट गुण पाए जाते हैं जो त्वचा को समय से पहले बूढ़ा होने से बचाने में मदद कर सकते हैं। यह त्वचा की चमक बनाए रखने में सहायक हो सकता है।

9. बालों के लिए लाभदायक: रागी में मौजूद प्रोटीन, आयरन और एंटीऑक्सीडेंट बालों के झड़ने को कम करने तथा समय से पहले सफेद होने से बचाने में सहायक हो सकते हैं।

10. शिशुओं के लिए उत्तम आहार: रागी को शिशुओं के लिए शुरुआती ठोस आहार के रूप में उपयोग किया जाता है। इसका दलिया बच्चों के शारीरिक विकास के लिए लाभकारी माना जाता है।

रागी में पाए जाने वाले प्रमुख पोषक तत्व (प्रति 100 ग्रा)

पोषक तत्व	मात्रा
प्रोटीन	7.7 ग्राम
वसा	1.8 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	75–83 ग्राम
फाइबर	15–22 ग्राम
कैल्शियम	398 मि.ग्रा.
आयरन	3.3–14 मि.ग्रा.
मैगनीशियम	78–201 मि.ग्रा.
पोटैशियम	430–490 मि.ग्रा.

रागी के उपयोग

रागी का उपयोग अनेक स्वादिष्ट और पौष्टिक व्यंजनों में किया जा सकता है:

1. रागी की रोटी
2. रागी डोसा
3. रागी इडली
4. रागी का दलिया
5. रागी लड्डू
6. रागी बिस्कुट
7. रागी पराठा
8. रागी बॉल्स (मुद्दे)
9. रागी माल्ट पेय
10. फेस पैक के रूप में बाहरी उपयोग

रागी के संभावित नुकसान

हालाँकि रागी अत्यंत लाभकारी है, लेकिन इसका अत्यधिक सेवन कुछ समस्याएँ उत्पन्न कर सकता है:

1. किडनी स्टोन की संभावना

रागी में कैल्शियम अधिक मात्रा में पाया जाता है, जो सामान्य रूप से हड्डियों के लिए लाभकारी है। लेकिन इसका अत्यधिक सेवन कुछ लोगों में किडनी स्टोन (पथरी) बनने या बढ़ने की संभावना बढ़ा सकता है। विशेषकर जिन व्यक्तियों को पहले से पथरी की समस्या है, उन्हें रागी का सेवन सीमित मात्रा में करना चाहिए। संतुलित सेवन और पर्याप्त पानी पीना आवश्यक है।

2. पेट संबंधी समस्याएँ

रागी में फाइबर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो पाचन तंत्र को स्वस्थ रखने और कब्ज की समस्या को दूर करने में सहायक होता है। लेकिन यदि रागी का अधिक मात्रा में सेवन किया जाए, तो कुछ लोगों को गैस, पेट फूलना, अपच या पेट में ऐंठन जैसी समस्याएँ हो सकती हैं। विशेषकर जिन लोगों का पाचन तंत्र संवेदनशील होता है, उन्हें इसका सेवन सीमित मात्रा में करना चाहिए। संतुलित सेवन और पर्याप्त पानी पीने से इन समस्याओं से बचा जा सकता है।

3. एलर्जी

कुछ लोगों को रागी के सेवन से एलर्जी की समस्या हो सकती है। ऐसे व्यक्तियों में खुजली, त्वचा पर चकत्ते, सूजन, उल्टी या सांस लेने में कठिनाई जैसे लक्षण दिखाई दे सकते हैं। यदि रागी खाने के बाद इस प्रकार की कोई समस्या महसूस हो, तो इसका सेवन तुरंत बंद कर देना चाहिए। जिन लोगों को पहले से किसी खाद्य पदार्थ से एलर्जी है, उन्हें रागी का सेवन सावधानीपूर्वक और आवश्यकता होने पर चिकित्सक की सलाह से करना चाहिए।

4. अधिक सेवन से पाचन पर दबाव

रागी पौष्टिक और फाइबर युक्त अनाज है, जो पाचन क्रिया को बेहतर बनाने में सहायक माना जाता है। लेकिन यदि इसका अचानक बहुत अधिक मात्रा में सेवन किया जाए, तो पाचन तंत्र पर अतिरिक्त दबाव पड़ सकता है। इससे अपच, भारीपन, गैस, पेट दर्द या असहजता जैसी समस्याएँ हो सकती हैं। विशेषकर जिन लोगों को पहले से पाचन संबंधी समस्या है, उन्हें रागी का सेवन धीरे-धीरे और संतुलित मात्रा में शुरू करना चाहिए। नियमित तथा सीमित सेवन से इसके लाभ सुरक्षित रूप से प्राप्त किए जा सकते हैं।

निष्कर्ष

रागी एक अत्यंत पौष्टिक और स्वास्थ्यवर्धक अनाज है, जो आधुनिक जीवनशैली में भी उतना ही उपयोगी है जितना प्राचीन समय में था। यह कैल्शियम, आयरन, फाइबर और प्रोटीन से भरपूर होने के कारण बच्चों, महिलाओं, बुजुर्गों तथा रोगियों के लिए लाभकारी है। यदि इसे संतुलित मात्रा में नियमित आहार में शामिल किया जाए, तो यह हड्डियों, हृदय, त्वचा, बालों और पाचन स्वास्थ्य के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इसलिए कहा जा सकता है कि रागी केवल एक अनाज नहीं, बल्कि सम्पूर्ण स्वास्थ्य का प्राकृतिक आधार है।

♣♣♣

सटीक फसल उगाने के नए तरीके

सौरभ- सस्य विज्ञान संकाय, शोध छात्र, राजा महेन्द्र प्रताप महाविद्यालय, गुरुकुल नारसन, (हरिद्वार)
सुक्रमपाल सिंह- सहायक कृषि अधिकारी, वर्ग-ए
राज्य बीज परीक्षण प्रयोगशाला, कृषि निदेशालय परिसर, प्रेमनगर, नंदा की चैकी, देहरादुन (उत्तराखंड)

सम्पूर्ण दुनिया की जनसंख्या के लिए कृषि भोजन का प्रमुख स्रोत है। विश्व की 8.2 बिलियन की वर्तमान जनसंख्या और भविष्य में बड़ी जनसंख्या हेतु खाद्य और पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कृषि उत्पादन के स्तर को और बढ़ाने की आवश्यकता है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के दौरान, खाद्य उत्पादन को बढ़ाने के अधिकांश प्रयास 'आधुनिक' कृषि आदानों को बेहतर बनाने और बढ़ाने पर केंद्रित थे, जिसमें उच्च आदान उपयोग, सिंचाई जल और अकार्बनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के लिए उत्तरदायी नई किस्म के बीज शामिल थे। फसलों को बोने का तरीका भी मानव द्वारा हाथ से बीज छिड़काव से बदलकर बैल चालित हल से तथा बुवाई हेतु ट्रैक्टर चालित सीड ड्रिल का उपयोग करके मशीनीकरण में बदल दिया गया है। 'हरित क्रांति' अवधि के दौरान आधुनिक कृषि-आदानों का गहन उपयोग देखा गया, जिसके परिणामस्वरूप फसल की पैदावार में पर्याप्त वृद्धि हुई, लेकिन इसकी सफलता बढ़ती वित्तीय और पर्यावरणीय लागत, घटते कृषि और आर्थिक लाभ से बाधित हुई है (पिंगली एवं अन्य, 1997), जो 'हरित क्रांति' की अवधि के दो दशकों के बाद और अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। अब कई वैज्ञानिक और विकास तथ्यों पर फसल की पैदावार कम या घटने या रुकने, कम उपज की गुणवत्ता, कम संसाधन-उपयोग दक्षता, मृदा स्वास्थ्य में गिरावट, जल की कमी और प्रदूषण, पर्यावरण प्रदूषण के बारे में गंभीर चिंताएं उचित रूप से उठाई गई हैं। इन तथ्यों को हल करने के लिए, सटीक फसल प्रबंधन विधियाँ (पीसीएमपी) बहुत मददगार हो सकती हैं (दास एवं अन्य, 2014)। कृषि स्तर पर पीसीएमपी का उद्देश्य उत्पादन और संसाधन उपयोग दक्षता को अधिकतम करना और पर्यावरणीय कारकों को कम करना है (दास, 2018; कार्यदास एवं अन्य, 2002)। प्रीसिजन फार्मिंग (पीएफ) या प्रीसिजन एग्रीकल्चर (पीए) एक अवधारणा के रूप में नई तकनीकों के उपयोग की परिकल्पना करता है और क्षेत्र की जानकारी एकत्र करता है, सही स्थान पर, सही समय पर सही काम करता है। एक 4 आर स्टीवर्डशिप सटीक इनपुट प्रबंधन रणनीति का मूल है। मृदा, जलवायु और पौधों के मापदंडों के बारे में विस्तृत जानकारी का उपयोग करके उपज और गुणवत्ता से समझौता किए बिना श्रम, जल,

उर्वरक, कीटनाशक आदि जैसे आदानों के अवांछित उपयोग से बचा जा सकता है।

सटीक कृषि पद्धतियों पर अंतर्निहित

कृषि विज्ञान के दृष्टिकोण से मूल रूप से पाँच प्रमुख फसल उत्पादन घटक (जुताई, बीजाई, पोषक तत्व प्रबंधन, जल प्रबंधन, खरपतवार प्रबंधन) हैं, जो सटीक कृषि सिद्धांतों को आत्मसात करने के लिए एक प्रबल संभावना हैं। कुछ फसल खेती प्रणालियां हैं जिनमें कुछ अंतर्निहित सटीक तत्व होते हैं। फसल उगाने की ऐसी आधुनिक तकनीकों में से एक फसल प्रणाली का गहनीकरण है, जिसे अब लोकप्रिय रूप से फसल गहनता प्रणाली (एससीआई) के रूप में जाना जाता है। एससीआई धान गहनता (एसआरआई) की प्रणाली के समान है। एससीआई में सटीकता के प्रमुख तत्व मूल रूप से बीज का बहुत सटीक उपयोग, मृदा और बीज की गुणवत्ता (बड़े, स्वस्थ और समान आकार के बीज) के अतिरिक्त पोषक तत्व और कीटनाशक के उपयोग के स्थानीय रूप से उपलब्ध जैविक और जैव उर्वरक समूह के साथ बीज उपचार शामिल हैं। एक समान और व्यापक दूरी भी अलग-अलग पौधों के जड़ क्षेत्र में आवश्यक पोषक तत्वों को रखने का मार्ग प्रशस्त करती है, इस प्रकार सटीक आदान अनुप्रयोग की सही मात्रा और सही स्थान सिद्धांतों को पूरा करती है। एससीआई के क्रियाओं में गेहूँ, सोयाबीन, बाजरा, गन्ना, कपास, सरसों, टेफ आदि के लिए एसआरआई के संस्करण शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक का अपना संक्षिप्त नाम (जैसे; एसडब्ल्यूआई, एसएफएमआई, एसएसआई, एसटीआई) है। सटीक अन्त-प्रजात पद्धति की पहचान की आवश्यकतानुसार न्यूनतम अपव्यय और संसाधनों के उपयोग के साथ उपलब्ध संसाधनों का कुशल उपयोग करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जो सटीक प्रबंधन (सही समय, सही स्थान, सही स्रोत) के 4 आर के अनुरूप है।

सारणी 1. पारम्परिक खेती के साथ एससीआई की तुलना।

फसल	बुवाई विधि	अंतरण (सें.मी.)	बीज दर (कि.ग्रा./हेक्टेयर)	एससीआई के साथ बीज में बचत (प्रतिशत)
धान	परम्परागत	15 × 10	60	10-15
	एसआरआई	25 × 25	8	
गेहूँ	परम्परागत	22.5 × 4	100-140	15-20
	एसडब्ल्यूआई	20 × 20	25-30	
सोयाबीन	परम्परागत	45 × 5.8	80-100	20-25
	एससीआई	30 × 30	25	
अरहर	परम्परागत	60 पंक्ति से पंक्ति	12-15	30-35
	एससीआई	75 × 105	5	
सांवा	परम्परागत	अनियमित	12-15	8-10
	एससीआई	25 × 25	1-2	
सरसों		अनियमित	12-13	35-40
		30 × 30 से 75 × 45	500-700 ग्रा./हे.	
अन्य फसल				
मक्का	परम्परागत	30 × 30	10-15	50-60
	एससीआई	40 × 40	2-3	
गाजर	परम्परागत	30 × 15	700-800 ग्राम/हे.	30-40
	एससीआई	उठी क्यारी रोपाई विधि (25)		

Source:(Adhikari एवं अन्य, 2018; Anon, 2012; Dass एवं अन्य, 2019

सारणी 2. छोटे भूमि धारकों के लिए फार्म में निर्मित परिशुद्धता प्राप्त करने के लिए उपलब्ध कृषि सम्बन्धी विधियाँ।

क्रमांक	सवंर्धित विधियां	अपेक्षित परिणाम
1.	बीज दर में कमी	सामान्य से अधिक में टिलर, रोपाई के बीच घटते बीज दर अनुपात
2.	बीज उपचार	मृदा में जैविक पोषक तत्वों का एकत्रीकरण, सूखा सहनशीलता
3.	अधिक दूरी पर बुवाई	बाली की लम्बाई में वृद्धि और स्वस्थ अनाज की प्राप्ति
4.	विशेष रूप से नियंत्रित परिस्थितियों में जल प्रबंधन	उपज में वृद्धि
5.	कोनो-वीडर का उपयोग करके निराई/निराई पद्धतियां	फसल और खरपतवार के बीच प्रतिस्पर्धा को प्रभावी तरीके से फसल के पक्ष में कम किया जाता है।
6.	भूमि को आकार देने वाली क्यारी लगाना, बांध से निकास द्वार	जल संचयन एवं जल निकास
7.	उर्वरक स्थानापन्न (फर्टिलाइजर प्लेसमेंट)-बैंड, स्प्लिट एप्लीकेशन, फर्टिगेशन, पर्ण स्प्रे उर्वरक	उपयोग दक्षता में वृद्धि, उर्वरक बर्बरता

स्रोतः शेही एवं अन्य से संशोधित (2004)

विभिन्न फसलों के लिए फसल गहनीकरण विधियों की प्रणाली:

रसायनों और उर्वरकों के उपयोग से फसल उत्पादकता लगभग उच्च स्तर पर पहुँच जाती है, साथ ही खाद्य उत्पादन की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। हालांकि, खेती के अंतर्गत क्षेत्र वही रहता है, इसलिए वर्तमान फसल प्रणालियों को गहनता से खेत में सटीक अन्त प्रजात प्रक्रियाओं की पहचान के साथ ही संसाधनों को बचाने में सहायक है और फसल उत्पादकता में भी सुधार हो सकता है। गहनता का मुख्य विषय कम बीज और कम जल का उपयोग करके कम से अधिक उत्पादन करना है, हालांकि पौधे और मृदा के बीच सम्बन्ध का प्रबंधन करना है, इसलिए इसे कम आदान सुधार कहा जाता है (अब्राहम एवं अन्य, 2014)। एससीआइ प्रक्रियाओं ने कई फसलों के लिए दो गुना से अधिक उपज वृद्धि प्राप्त की है। एससीआइ ने बाढ़ के अतिरिक्त मृदा को नम रखने के लिए केवल जल के उपयोग से कम करना सुनिश्चित किया है। इन प्रक्रियाओं के साथ, खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए कोनो-वीडर का उपयोग करके निराई-गुड़ाई भी मृदा वातन को बढ़ाती है और पोषक तत्वों की आपूर्ति को अधिकतम करती है। चूंकि एससीआइ को कम आदान लागत (रसायनों के बिना या कम उपयोग के साथ) की आवश्यकता होती है और बहुत अधिक लाभ प्रदान करती है, इस पद्धति के साथ फसलों विकास के लिए बहुत कम बाहरी आदान की आवश्यकता होती है। झाओ एवं अन्य, 2009 ने कहा कि एससीआइ विधियों का उपयोग करते हुए, कई देशों में छोटे जोत वाले किसानों को अपनी भूमि, श्रम, बीज, जल और पूंजी से अधिक पैदावार और अधिक उत्पादकता प्राप्त होने लगी है, उनकी फसलें खतरों के प्रति अधिक लचीलापन दिखा रही हैं। जलवायु परिवर्तन और प्रकृति में अंतर्निहित प्रणाली भी है।

1. धान गहनता प्रणाली (एसआरआई)

धान उत्पादन में प्रमुख बाधा उपयुक्त फसल प्रबंधन विधिओं और पर्याप्त सिंचाई सुविधाओं की कमी है। भविष्य की खाद्य आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, ताजे जल के लिए गैर-कृषि उपयोगों से प्रतिस्पर्धा और वर्तमान में धान की फसल में अधिक मात्रा में पानी का उपयोग किया जाता है, धान की खेती के नए एसआरआई तरीकों की पहचान कम पानी की आवश्यकता और उच्च फसल उत्पादकता के उद्देश्य से की गई है। यह सिंचित धान के उत्पादन को बढ़ाने के लिए और अब कई अन्य फसलों के लिए मान्य ज्ञान पर आधारित कृषि सम्बम्धी प्रक्रियों को लाभकारी रूप से परिवर्तित करने के लिए विचारों और अंतदृष्टि का एक समूह है। श्री प्रबंधन में धान की खेती के लिए पारम्परिक रूप से अनुशंसित विधियों से कई विचलन शामिल हैं। श्री विधि न केवल अधिकतम उपज का लक्ष्य है, बल्कि भूमि, श्रम, पूँजी और जल की उच्च उत्पादकता को बढ़ावा देना है जिससे किसानों, विशेष रूप से गरीबों को लाभ हो। एसआरआई के लिए मूल विचार एकल पौधे/स्थान, नवजात पौध (2-पत्ती चरण) का प्रत्यारोपण, वनस्पति विकास के दौरान न्यूनतम जल का अनुप्रयोग, मृदा वातन को सुनिश्चित करना, आधार उर्वरक के रूप में जैविक संशोधनों का उपयोग करना है (दास और चंद्रा, 2013, दास एवं अन्य, 2013, दास एवं अन्य, 2016)। उच्च संभव अनाज उपज की कटाई के लिए एसआरआई प्रणाली में इष्टतम प्रत्यारोपण दूरी को एक महत्वपूर्ण पैरामीटर बताया गया है (ठाकुर एवं अन्य, 2010)। धान में पौधे की दूरी का पौधों की संख्या, बायोमास,

ISSN: 3049-2211

जुताई, प्रति पौधा उत्पादक टिलर और प्रति बाल में दानों की संख्या पर प्रभाव पड़ता है (ठाकुर एवं अन्य, 2008)। श्री के अनुसार, पारम्परिक प्रतिरोपित धान की पैदावार की तुलना में दोगुना अधिक पैदावार की भी सूचना मिली है (दास ठाकुर एवं अन्य, 2015)। आजकल एसआरआई का अनुभव किसानों को अन्य फसलों जैसे; गेहूँ, गन्ना, सरसों, सोयाबीन, टेफ (प्रसाद, 2008) के लिए श्री पद्धति की अवधारणाओं, सिद्धांतों और प्रक्रिओं का विस्तार करने के लिए प्रेरित कर रहा है। इसके अतिरिक्त यह देखा गया है कि सफल श्री पद्धतियां कई अन्य फसलों, जैसे कि गेहूँ, टेफ घास, मक्का, ज्वार, बाजरा, सोयाबीन, काला चना, राजमा, मसूर, सरसों, गन्ना, टमाटर, बैंगन, मिर्च, आलू, गाजर और प्याज इत्यादि उगाने के लिए प्रेरित कर रही हैं (आईएसडी, 2009)। एसआरआई के समान, एससीआई क्रियाओं ने भी फसलों की उपज के स्तर को दो गुना से अधिक बढ़ाने के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है (यूफॉफ एवं अन्य, 2011)।

2. गेहूँ गहनता प्रणाली

गेहूँ गहनता प्रणाली (एसडब्ल्यूआई) जो एसआरआई के सिद्धांतों पर आधारित है, गेहूँ की खेती की एक नई तकनीक है, जो पौधे से पौधे की दूरी बनाए रखने की मांग करती है। बीज को पौधे से पौधे और पंक्ति से पंक्ति की दूरी को 20-25 सें.मी. की दूरी पर बनाए रखते हुए बोया जाता है, इस प्रकार की बुवाई उचित अंतराल के साथ पर्याप्त वातन, नमी और पोषक तत्वों की उपलब्धता की अनुशंसा की जाती है जिससे प्रारंभिक चरण से उचित और स्वस्थ जड़ विकास होता है। इसमें पौधों की वृद्धि के हर चरण में गहन देखभाल और कम बीज दर, बीज उपचार और जल के प्रभावी प्रबंधन और अंतवर्तीय खेती पद्धति जैसे कृषि सम्बन्धी क्रियाओं में संशोधन शामिल हैं, जिसके परिणामस्वरूप अधिक संख्या में टिलर/पौधे, प्रभावी टिलर की संख्या में वृद्धि हुई है। प्रति बाल में दाने की लम्बाई और मोटे अनाज में वृद्धि और अंत में गेहूँ की उपज में वृद्धि हुई है। आदान लागत और श्रम को कम करने से भारत में छोटे किसानों के लिए शुद्ध लाभ में वृद्धि हुई है। यह संवर्धित मृदा, जल, बुवाई विधि, पोषक तत्व प्रबंधन के माध्यम से अच्छी बढ़ती स्थिति प्रदान करता है। अध्ययनों से पता चलता है कि एसडब्ल्यूआई उपलब्ध सर्वोत्तम पारम्परिक बुवाई प्रक्रियाओं की तुलना में 54 प्रतिशत अधिक उपज देता है और बेहतर आर्थिक लाभ देता है (यूफॉफ एवं अन्य, 2011, अधिकारी, 2012)। पारम्परिक प्रणाली में, किसान लगभग 100-140 कि.ग्रा./हेक्टेयर बीज का उपयोग करते हैं लेकिन एसडब्ल्यूआई विधि में इस राशि का केवल 5-7.5 प्रतिशत बीज की आवश्यकता होती है (स्टाइगर और इब्राहिम, 2009)। पारम्परिक विधि में, बीज बहुत कम बोए जाते हैं, पौधों की जड़ें जल, पोषक तत्वों की आवश्यकता और सूर्य के प्रकाश के लिए एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करती हैं (कौर एवं अन्य, 2012)।

बिहार और भारत के कुछ अन्य राज्यों में किसानों का (जिन्होंने एसडब्ल्यूआई फसल प्रबंधन को स्वीकार किया है) सुझाव है कि एसडब्ल्यूआई प्रति इकाई आदान, जैसे कि बीज, जल, उर्वरक, भूमि, श्रम और पूँजी के लिए उच्च उत्पादन का अवसर प्रदान करता है (बेहरा एवं अन्य, 2013; अब्राहम एवं अन्य, 2014)।

एससीआई पद्धति के अंतर्गत, बीजों को विशिष्ट बीज उपचार रसायन से उपचारित किया जाता है, जिसे 20-25 लीटर गर्म जल (60 डिग्री सेल्सियस), गोमूत्र (5.0 लीटर) और वर्मी-कम्पोस्ट में गुड़ (2.5 कि.ग्रा.) मिलाकर तैयार किया जाता है। जब भी आवश्यक हो, घोल को तरल अवस्था में रखने के लिए उपयुक्त मात्रा में जल मिलाया जाता है। इस उद्देश्य के लिए मृदा के गमलों का उपयोग किया गया था, क्योंकि धातु के कंटेनरों की अनुशंसा नहीं की जाती है। बीज उपचार घोल तैयार करने के लिए जल को 60°ब् तक गर्म करें, फिर उसमें गोमूत्र डाल कर घोल को हिलाया जाता है। उसके बाद गुड़ और वर्मी कम्पोस्ट को पानी (60°C) में मिलाकर अलग-अलग तैयार किया जाता है। उपरोक्त मिश्रण (जल में गुड़ और वर्मीकम्पोस्ट और गोमूत्र का मिश्रण) अच्छी तरह से आपस में मिला हुआ है। 30 मिनट के बाद, बीजों को मिश्रण में क्रमशः 4-5 और 6-8 घंटे के लिए भिगोया जाता है (सिंह एवं अन्य, 2018)।

सारणी-3 पारम्परिक गेहूँ की खेती और गेहूँ गहनता प्रणाली (एसडब्ल्यूआई) के बीच तुलना।

विवरण	पारम्परिक खेती	एसडब्ल्यूआई विधि
बीज दर	100-125 कि.ग्रा./हेक्टेयर	20-30 कि.ग्रा./हेक्टेयर।
बीज उपचार	नहीं किया गया	गोमूत्र के साथ गुड़ और कवकनाशी से।
बुवाई की विधि	छिटकवां	लाइन में अधिक दूरी के साथ बुवाई
पौधों के बीच की दूरी	कोई दूरी नहीं	20 सें.मी.×20 सें.मी. से 50 सें.मी.×20 सें.मी.।
जुताई	जुताई न की गई हो या शाकनाशी	3 बार शाकनाशी द्वारा या कोनोवीडर द्वारा।
पैनिकल की लम्बाई	10-11 सें.मी.	15 सें.मी.
पैनिकल में	18-50	100-150

दानों की संख्या		
पैनिकल/पौधा	अधिकतर 1-2, अच्छा स्टैंड 2-4	20-45
अंकुरण का समय	बुवाई के 7 दिन बाद	बुवाई के 2-3 दिन बाद।
पत्ती की चैड़ाई	पतली कम LAI	अधिक मोटी एवं अधिक LAI
तने की चैड़ाई	पतली	पतली मोटी।
जड़ की गहराई	उथली जड़	गहरी जड़ (8-10 इंच तक)।
दी गई सिंचाई की संख्या	2-4	4-5
अपज	1-2 टन/हेक्टेयर	3-4 टन/हेक्टेयर

स्रोतः प्रधान (2012)।

3. सोयाबीन गहनता की प्रणाली

एससीआई को पादप अंतरण को बदल कर सोयाबीन तक बढ़ाया जा सकता है, जो पौधों की प्रतिस्पर्धा को कम करने में सहायता करेगा और उन प्रमुख तनावों के निदान पाने में भी सहायता करेगा जो पौधे विकास के दौरान अनुभव कर सकते हैं। कम और अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों के मामले में उठी क्यारी रोपण प्रणाली जो कम वर्षा वाले क्षेत्रों में जल संचयन और उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों में जल निकासी के रूप में दोहरा लाभांश फलदायी परिणाम देती है। फसल गहनता प्रणाली (एससीआई) के अंतर्गत सोयाबीन में 4.2 गुना अधिक संख्या में शाखाएं/पौधा, 2.75 गुना अधिक शुष्क पदार्थ/पौधा, 3.7 गुना अधिक फली/पौधा, 4.3 गुना अधिक बीज/पौधे और 4 प्रतिशत अधिक वजन (100) प्राप्त किया।

4. सरसों की सघनता प्रणाली

इस प्रणाली में, कम जल और बीजों का उपयोग करके और मृदा स्थिति पैदा करते हुए, जो वातित और सूक्ष्म जीवों के अनुकूल होती है, एक और दूसरे से व्यापक दूरी पर बुवाई की जाती हैं। श्री सिद्धांतों को अपनाने से प्राप्त उपज पारम्परिक तरीकों से प्राप्त उपज से लगभग दोगुनी है। प्रसारण विधि में फसल को पकने में 100-105 दिन लगते हैं जबकि रोपाई विधि के अंतर्गत यह रोपाई के 90-95 दिनों में पक जाती है। एक व्यापक दूरी वाले पौधे में 100 ग्राम से अधिक बीज हो सकते हैं, लेकिन 50,000 से 70,000 पौधों/हेक्टेयर के समुदाय में, औसत प्रदर्शन 40 और 75 ग्रा./पौधों के बीच रहता है। वास्तव में, बुवाई का तरीका प्रसारण की तुलना में महंगा रहा है। हालांकि, प्रत्यारोपण गणितीय सटीकता के साथ सही पौधों की संख्या प्रदान करता है और अक्सर लाभप्रद होता है। जैसा कि पहले बताया गया है, अलग-अलग पौधों की पूरी क्षमता को प्रत्यारोपित करके किया जा सकता है। उर्वरक के अतिरिक्त, अधिमानतः वर्मी-कम्पोस्ट, कुछ जैव उर्वरक आदि का उपयोग किया जाता है। संतोषजनक उपज प्राप्त करने के लिए ट्राइकोडर्मा, पीएसबी आदि और अकार्बनिक उर्वरक की थोड़ी मात्रा का प्रयोग किया जा सकता है। रोपाई के 60 दिनों के बाद, पौधों के चारों ओर की मृदा को कुदाल से तोड़ दिया जाता है जबकि खरपतवार भी हटा दिए जाते हैं। जबकि फसल प्रबंधन की इस तरह की गहनता से उत्पादन की लागत बढ़ जाती है, उच्च परिणामी उपज किसानों की प्रति किलोग्राम सरसों के उत्पादन की लागत से आधी हो जाती है, जो उनके अतिरिक्त श्रम को लाभदायक बनाती है।

सारणी 4. सरसों की खेती के लिए एसएमआई और पारंपरिक विधि के बीच अंतर

विवरण	परम्परागत विधि	एसएमआई विधि
बीज दर	13 कि.ग्रा./हे.	0.5-0.7 कि.ग्रा./हे.
बीज उपचार	नहीं किया	गुड़, गोमूत्र, गर्म पानी और वर्मी कम्पोस्ट से उपचारित
बुवाई विधि	छिटकवां	रोपण
बुवाई की दूरी	अनियमित	30 × 30 सें.मी. से 75 × 45 सें.मी.
खरपतवार नियंत्रण	निराई-गुड़ाई नहीं किया गया	रोपाई के 15, 25 दिनों के बाद खरपतवार नियंत्रण
सिंचाई	2-4 बार	5-6 बार
शाखा/पौधे	3-5	8-15
उपज/हे.	12-15 क्विं./हे.	30-35 क्विं./हे.
बीज का भार/पौधे	15-30 ग्राम	150-200 ग्राम

स्रोतः प्रधान (2012)

5. अरहर गहनता की प्रणाली

अरहर की प्रमुख बाधाओं में कम उपज देने वाली किस्मों के उपयोग, प्रबंधन प्रक्रियाओं के खराब स्तर, उच्च पौधों की संख्या, उर्वरकों के असंतुलन, सूखे या भारी वर्षा के कारण नुकसान और सर्दियों के दौरान पाले के कारण कम उत्पादकता इत्यादि है। इन प्राकृतिक समस्याओं को दूर करने के लिए आज कई किसान इस फसल को पहले पॉलीबैग में उगाते हैं और फिर मुख्य खेत में रोपाई करते हैं। अरहर की गहनता प्रणाली (एसपीआई) के कुछ प्रमुख लाभों में बीज की बचत,

ISSN: 3049-2211

जल्दी बुवाई करना, फसल को पाले से होने वाले नुकसान से बचाना और बेहतर उपज शामिल है।

कर्नाटक के किसानों ने बताया कि वे एसपीआई विधियों का उपयोग करके अरहर की अधिक पैदावार प्राप्त कर रहे हैं, क्योंकि प्रतिरोपित अरहर के पौधे प्रति पौधे सामान्य 50-100 फली की तुलना में 2,000 फली/पौधे तक पैदा कर सकते हैं। प्रति वर्ग मीटर पौधों की संख्या कम करने से फसल उत्पादकता पर गहरा लाभकारी प्रभाव पड़ता है। हालांकि अरहर के साथ एससीआई फसल प्रबंधन के लिए अधिक श्रम की आवश्यकता होती है, किसानों की आय में काफी सुधार होने की सूचना है। नई पौध के उपयोग और चैड़ी दूरी को बढ़ावा देने से दुगनी उपज के साथ-साथ फसल चक्र को 160 दिनों से घटाकर 130 दिन कर दिया गया (गणेसन 2013)।

श्री सिद्धांतों का पालन करने से फसल की वृद्धि में सुधार हुआ। कई शाखाएं/पौधे थे और फली का वजन काफी अधिक था। किसानों ने लगभग 14 कु./हेक्टेयर की कटाई की, जबकि क्षेत्र में सामान्य औसत उपज 8.5 कु./हेक्टेयर थी। इसके अलावा, फसल के विकास के चरण के दौरान कीट और बीमारी के कम कारक थे, हालांकि फली बनने के चरण के दौरान फली छेदक देखा गया था। किसानों ने कीटों को नियंत्रित करने के लिए उच्च लागत वाले रसायनों के कारण नीम स्प्रे का सहारा लिया। कम बीज दर और बाहरी आदानों के कम उपयोग से भी कृषि लागत में काफी कमी आती है। एसपीआई के अंतर्गत अरहर की पैदावार में वृद्धि और कम लागत से किसानों की शुद्ध आय में वृद्धि हुई।

सारणी 5 अरहर की खेती के लिए एसपीआई और पारम्परिक विधि के बीच अंतर।

सस्य क्रियाएं	परम्परागत विधि	श्री विधि की सस्य क्रियाएं
बुवाई विधि	वर्षा के बाद बुवाई की सीधी बुवाई	पॉलीथीन कवर में पौध उगाना और बाद में रोपाई
किस्म का उपयोग	स्थानीय और उन्नत किस्म	बीआरजी-1, बीआरजी- 2 जैसी उन्नत किस्में
बीज दर	12-15 कि.ग्रा./हे.	5 कि.ग्रा./हे.
बुवाई	-	30-35 दिन बाद पौध रोपाई
अंतरण	पंक्तियों में 60 सें.मी. की दूरी केवल	75 सें.मी. × 105 सें.मी.
खरपतवार नियंत्रण	नहीं किया गया	दो बार निराई
निपिंग	निपिंग नहीं किया गया	30 दिनों के बाद रोपाई
उपज	8.6 क्विं./हे.	14.8 क्विं./हे.

स्रोतः एएमईएफ (2009)।

6. बाजरा गहनता प्रणाली

उत्पादकता में वृद्धि, खेती की कम लागत और जलवायु तनाव को सहन करने से छोटे और सीमांत किसानों के लिए बाजरा गहनता सहिष्णु और लाभप्रद उपयोगी सिद्ध हुई है। कर्नाटक के दक्षिणी राज्य में हावेरी जिले के किसानों ने श्री प्रबंधन फसल गहनता की प्रणाली है। अन्य क्षेत्रों में बाजरे की विधि को लोकप्रिय बनाया जा रहा है। सिंचाई सुविधाओं वाले क्षेत्रों और अपेक्षाकृत अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए सबसे उपयुक्त है। किसानों की सबसे आम कृषि पद्धतियाँ प्रसारण और यादृच्छिक रोपाई हैं। इस प्रकार, पौधों का अनियमित वितरण होता है, जो पंक्तियों में पौधों के बीच प्रकाश, नमी और पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा का कारण बनता है। एसएफएमआई पद्धति में, 12 दिन पुरानी पौध को बीज क्यारी में बहुत कम उगाया जाता है, जो 45 सें.मी.×45 से.मी. की चैड़ी दूरी के साथ रोपाई के लिए उपयोग किया जाता है और नवजात पौधों को एक अच्छा वातावरण देने के लिए जड़ों के चारों ओर खाद डालते हैं, जिसमें वे बढ़ने लगते हैं। जबकि पौधे अभी भी स्वस्थ हैं, रोपाई के 15 से 45 दिनों के बीच, किसान कई दिशाओं में पूरे खेत में एक लाइन बोर्ड खींचते हैं। युवा पौधों को अलग-अलग दिशाओं में झुकाने से पौधों के शीर्ष भाग में मेरिस्टेमेटिक ऊतक से जड़ों और टिलर की अधिक वृद्धि को बढ़ावा मिलता है, जो मृदा की सतह के स्तर पर या उसके ठीक नीचे होते हैं। इसके साथ ही, किसान 5-7 अंतवर्तीय खेती के बीच की मृदा को एक और बैल द्वारा खींचे गए औजार से ढीला कर देते हैं जो बाजरे के पौधों के बीच उगने वाले किसी भी खरपतवार की जड़ों को मृदा की सतह से 3-5 सेंटीमीटर नीचे काट देता है।

बाजरे की खेती में पारम्परिक विधिओं के साथ, प्रसारण विधि में उपज 4 कु./हे. जितनी कम थी, जो कि ज्यादातर ऊपरी क्षेत्रों में की जाती है और यहाँ तक कि मध्यम भूमि में पारम्परिक रोपाई पद्धति में भी उपज 1 टन/हे. थी। बाजरे की जब एससीआई के साथ खेती की जाती है, तो उपज बढ़ जाती है, क्योंकि पौधों और खरपतवारों के बीच कम प्रतिस्पर्धा होती है, पौधे भूमि के नीचे और ऊपर के संसाधनों का प्रभावी ढंग से उपयोग कर सकते हैं। अपनी फसल को नवजात पौध के साथ शुरू करके, विस्तृत दूरी और समृद्ध जल और पोषक तत्व प्रबंधन के साथ, SFMI की पैदावार बढ़कर 3 टन/हे. या उससे अधिक हो गई। जबकि गहन प्रबंधन से किसानों की लागत लगभग 25 प्रतिशत बढ़ जाती है, उच्च पैदावार उनकी उत्पादन लागत को 60 % से कम कर देती है, रु.34 रुपये प्रति कि.ग्रा. से रु.13.5 प्रति कि.ग्रा., जिससे एसएफएमआई बहुत लाभदायक हो गया। उपजाऊ मृदा पर, एससीआई विधियों का उपयोग करके भिण्डी की औसत उपज 4.5-4.7 टन/हे. पाई गई है, जो किसान

की सामान्य उपज से चार गुना अधिक है। एससीआई प्रक्रियाओं को अपनाने से उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है, जो बदले में, कृषि आय और पोषण सुरक्षा को बढ़ा सकती है।

सारणी 6. बाजरे खेती की एससीआई और पारम्परिक विधियों के बीच तुलना (प्रति हेक्टेयर)।

विवरण	पारम्परिक विधि	एससीआई विधि (बाजरा गहनता प्रणाली)
बीज दर	12-15 कि.ग्रा.	1.2 कि.ग्रा.
बीज उपचार	कोई नही	गोमूत्र के साथ बीजोपचार, बीजामृत
पौधशाला	कोई नर्सरी सीड बेड नहीं	35/40 दिन पुराने अंकुरों का प्रसारण/रोपाई
रोपाई	35/40 दिन पुराने अंकुरण का प्रसारण/रोपाई	12-15 दिन पुरानी पौध की रोपाई
पौधों की दूरी	अनियमित	45 सें.मी.× 45 सें.मी. चैकोर पैटर्न में
खरपतवार नियंत्रण	निराई नहीं की जाती है।	रोपाई के 20 दिनों के बाद पहली निराई कोनो वीडर से। दूसरी निराई-गुड़ाई हाथ से।
जल प्रबंधन	जल प्रबंधन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वर्षा सिंचित परिस्थितियों में किया जाता है	जल प्रबंधन की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि वर्षा सिंचित परिस्थितियों में किया जाता है
कल्ले/पौधा	1-2	8-12 औसतन
बालियां/ कल्ला	3.4	7-9
तना	पतला	मोटा
जड़ें	काफी उथली गहरी,	मृदा में 30 सें.मी.
उपज/हेक्टेयर	0.4 टन/हेक्टेयर ऊपरी भूमि में, 1 टन/हेक्टेयर-पारंपरिक रोपाई	अधिकतम 4.7 टन/हेक्टेयर दर्ज किया गया

स्रोतः प्रभाकर (2018)

7. कपास गहनता प्रणाली

पिछले पांच वर्षों में, कपास उत्पादकों ने कपास के शुरुआती रोपण में स्थानांतरित कर दिया था ताकि रोपाई के उद्भव पर गर्मी प्रतिबल के जोखिम से बचा जा सके और मई के महीने के दौरान इष्टतम पौधों की संख्या को बनाए रखा जा सके। अन्य संभावित चयनों में से, कपास की रोपाई उच्च तापमान के अंतर्गत कपास के पौधों की उचित स्थापना के लिए सर्वोत्तम अवसर प्रदान करती है। इस प्रणाली में, कपास के पौधे शुरुआती मौसम के दौरान ग्रीनहाउस में उगाए जाते हैं, फिर मार्च के महीने में खुले खेतों में प्रत्यारोपित किए जाते हैं (अली एवं अन्य, 2010)। प्रतिरोपित कपास को प्रभावी पाया गया है, क्योंकि यह इष्टतम पौधों की संख्या और प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक संख्या में बीजकोषों को बनाए रखता है। सीधी बुवाई में, पौध मृत्यु दर स्पष्ट रूप से नर्सरी में उगाई गई नर्सरी की तुलना में अधिक (35.1 प्रतिशत) थी। रोपाई के लिए, मृत्यु दर (4.1 प्रतिशत) थी जिसे नर्सरी की नियमित सिंचाई और नेट हाउस में छायांकन के लिए उपयोग किया जा सकता है, जो मौसम के मापदंडों को विशेष रूप से तापमान और मृदा नमी को इष्टतम सीमा के अंदर रखता है। नर्सरी के विपरीत, खेत की स्थिति के अंतर्गत, परिवेशी वातावरण के तापमान की तुलना में मृदा सतह का तापमान बहुत अधिक (कभी-कभी 50 डिग्री सेल्सियस) था, जिसका कारण सीधी बुवाई की गई कपास के खराब अंकुरण और अंकुरित पौधों की उच्च मृत्यु दर थी। बुवाई के 20-30 दिन बाद भी अंकुरित पौधों की उच्च मृत्यु दर के कारण इष्टतम पौधों की संख्या को बनाए रखना संभव नहीं था। प्रतिरोपित कपास में, रोपाई के बाद मृत्यु दर कम थी, जिसके परिणाम स्वरूप सीधी बोई गई फसल की तुलना में बेहतर पौधे प्राप्त हुए है (राजपूत एवं अन्य, 2001)।

निष्कर्ष

किसान आमतौर पर नई तकनीकों के बारे में सतर्क रहते हैं। किसी भी बड़े पैमाने पर उपयोग करने से पहले स्थानीय परिस्थितियों में उनका परीक्षण करेंगे, जब तक कि सरकारी नीतियों द्वारा समृद्ध किया जाए। प्रक्षेत्र में एससीआई विधियों को तत्काल और व्यापक रूप से अपनाने का प्रस्ताव करने हेतु प्रतिष्ठानों और व्यक्तियों को इन नई संभावनाओं में रुचि लेने की इच्छा होनी चाहिए, जो कि कई देशों में और कई फसलों के लिए और व्यवस्थित मूल्यांकन करने के लिए पाई गई हैं। आगे विकास और सुधार में इन मूल्यांकन में किसानों को शामिल करना और विचारों और विधियों के भारत सहित दुनिया भर में किए गए सीमित शोध ने एससीआई विधियों के साथ पर्याप्त लाभ दिखाया है। अतः जैसा कि ऊपर सुझाव दिया गया है, के सटीकता के कुछ तत्वों के साथ ऐसी नई विधियों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए और अनुसंधान और विकास हेतु अनुदान प्रदान किया जाना चाहिए।

♣♣♣

प्याज की लाभकारी एवं उन्नत खेती

कृष्णा जाट, विनोद प्रजापत, डा. अशोक चैधरी, डा. रंजना सिरोही, यशपाल चैधरी, सुरभि सिंह
राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापुरा -जयपुर
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (जयपुर)

प्याज एक प्रमुख शल्ककन्दीय वाली सब्जी है, जो भारत के महाराष्ट्र, मध्य प्रदेष, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, उड़ीसा, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात तथा राजस्थान राज्यों में उगाई जाती है। राजस्थान में अजमेर, जयपुर, सीकर, झुन्झुनू, नागौर, जोधपुर, चित्तौड़गढ़, अलवर आदि जिलों में प्याज व्यवसायिक स्तर पर बोया जाता है। अलवर एवं अजमेर जिलों में प्याज प्रमुख रूप से खरीफ में बोया जाता है। अचार, मसाले, सलाद एवं हरे प्याज की सब्जी बनाकर भी खायी जाती है। इसको सूखाकर चुर्ण एवं पेस्ट बनाकर भी उपयोग में लिया जाता हैं। गर्मी में प्याज लू से भी बचाता है।

जलवायु एवं मृदा

मध्यम जलवायु न ज्यादा ठंड एवं न ज्यादा गर्मी का मौसम प्याज की खेती के लिए उपयुक्त होती है। प्याज के पौधो की वृद्वि के समय लगभग 13-23 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान जबकि कंद बनते समय तापक्रम 25-30 डिग्री सेन्टीग्रेड के मध्य होना आवष्यक है, फसल उत्पादन के समय आपेक्षिक आर्द्रता 70 प्रतिशत होनी चाहिए। पौध की रोपाई के समय तापमान कम होने पर बोल्टींग की समस्या जल्दी आती हैं। जिससे कंदो की गुणवत्ता में कमी होती है। उपजाऊ हल्की दोमट या चिकनी बलुई मिट्टी सर्वोत्तम मानी जाती है। मृदा का पी.एच मान 5.8- 6.5 के मध्य, कार्बनिक जीवाष्म से भरपूर तथा उचित जल निकास वाली मिट्टी होनी चाहिए।

प्रमुख उन्नत किस्में:

रबी फसल वाली किस्में-

लाल रंग कन्द वाली किस्में- एग्रीफाउण्ड डार्क रेड, एग्रीफाउण्ड लाइट रेड, पूसा रेड, पंजाब रेड, पूसा रत्नाकर, आर. ओ-59, आर. ओ.-252, उदयपुर-101, उदयपुर-103, एन-53, कल्याणपुर रेड राउण्ड, अर्का प्रगति, अर्का लालीमा, अर्का निकेतन, अर्का बिंदु, एग्रीफाउण्ड रोज, पूसा माधवी, पंजाब रेड राउण्ड, भीमा शक्ति, भीमा किरण, भीमा सुपर, भीमा डार्क रेड आदि।

सफेद रंग कन्द वाली किस्में- एग्रीफाउण्ड व्हाइट, पूसा व्हाइट राउण्ड, पूसा व्हाइट फ्लेट, उदयपुर-102, पंजाब सफेद, भीमा सुभ्रा, भीमा श्वेता आलोक सफेद।

पीले रंग वाली किस्में- अर्का पीताम्बर, आर. ओ-1, अर्ली ग्रेनो, फुले स्वर्णा।

खरीफ फसल वाली किस्में- एन-53, एग्रीफाउण्ड डार्क रेड, अर्का कल्याण, अर्का प्रगति, भीमा सुपर, भीमा रेड, फुले सामर्थ्य आदि।

खेत की तैयारी

पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा बाद की 2-3 जुताई हल चलाकर खेत को अच्छी तरह से तैयार कर लेवें। प्रत्येक जुताई

ISSN: 3049-2211

के बाद पाटा चलायें ताकि खेत में बिखरे ढ़ेले टूट जायें व मिट्टी अच्छी तरह भुरभुरी हो जाए।

बीज की मात्रा एवं बुवाई का समय

रबी फसल के लिए 8-10 किलोग्राम, खरीफ के लिए 10-12 किलोग्राम बीज एवं लगभग 8-10 क्विंटल गंठिया प्रति हैक्टेयर पर्याप्त रहता है। इसके बीजों की बुवाई रबी में मध्य अक्टूबर - मध्य नवम्बर में तथा रोपाई दिसम्बर माह में एवं खरीफ मौसम में जून-जुलाई माह में कर सकते है।

पौध तैयार करने की विधि

बीज बोने के लिए क्यारियाँ 15-20 से.मी. ऊँची उठी, 1 मीटर चैडी तथा 3-4 मीटर लम्बी बनाकर बीज की बुवाई करें। साधारणतया 1 वर्ग मीटर क्षेत्र में 10 ग्राम बीज डालना चाहिए। पौधषाला की मिट्टी को 15 दिन पहले पानी देकर पारदर्षी पालिथीन (200 गेज मोटी) से ढककर ‘‘सोलाराईजेशन‘‘ या बुआई के पहले ट्रायकोडर्मा विरिडी कल्चर 1250 ग्राम प्रति हैक्टयर की दर से उपचारित करने से मृदाजनित रोगो से बचा जा सकता है। बीज की बुवाई पौधषाला में 4-5 से.मी. की दूरी पर कतारों में 2-3 से.मी. गहराई पर बोना चाहिए। बुवाई से पहले बीज का उपचार 2 ग्राम थायोफैनेट मिथाइल या 4 ग्राम ट्रायकोडर्मा से करना चाहिए। बीज की बुवाई के बाद बीज को बारिक गोबर की खाद या सूखी घास से ढ़ककर हल्की सिंचाई करें। खरीफ में 6-7 सप्ताह में तथा रबी में 7-8 सप्ताह में पौध रोपाई के लिए तैयार हो जाती है।

पौध की रोपाई

रबी फसल की रोपाई 15 दिसम्बर से 15 जनवरी माह में करनी चाहिए। रोपाई से पूर्व पौध की जडों को कार्बेन्डाजिम 1.5 ग्राम प्रति लीटर के घोल में 20 मिनट तक उपचारित करके रोपण से जड़ सडन रोगों से बचाया जा सकता है। पौधे से पौधे 10 सेन्टीमीटर एवं कतार से कतार 15 सेन्टीमीटर दूरी पर रोपाई करना चाहिए। रोपाई करने के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करे।

खाद और उर्वरक

खाद और उर्वरक की मात्रा मृदा नमूने की जाँच पर निर्भर करती है अतः बुआई से पूर्व मृदा के नमूने की जांच अवश्य करवायें। खेत की तैयारी के समय 250-300 क्विंटल प्रति हैक्टेयर अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद मृदा में मिलायें। नत्रजन 50 किलोग्राम, फास्फोरस 50 किलोग्राम तथा पोटाश 100 किलोग्राम की पूर्ण मात्रा प्रति हैक्टर अन्तिम जुताई के समय देना चाहिए। 50 किलोग्राम नत्रजन की मात्रा रोपाई के 30 दिन व 45 दिन बाद दो बराबर भागों में बाँट कर खड़ी फसल में देवें। जिंक की कमी वाली मृदाओं में 25 किलो जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर डालने से प्याज की पैदावार अच्छी होती है।

खरपतवार नियंत्रण

फसल की शुरूआती अवस्था में 30-35 एवं 45-60 दिन में 2-3 निराई-गुड़ाई करके खरपतवार निकालना चाहिए या पेंडिमिथालिन 30 ई.सी. 750 ग्राम सक्रिय तत्व या आक्सिफ्लोरोफेन 23.5 प्रतिशत 250 ग्राम सक्रिय तत्व या आक्साडायरजील 6 ई.सी. 90 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर को 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर रोपाई से पहले या तुरन्त बाद छिड़काव करने से खरपतवार से बचा जा सकता है।

सिंचाई

सर्दी के मौसम में सिंचाई लगभग 10-15 दिनों के अन्तर पर करते हैं परंतु गर्मी में 5-7 दिनों में सिंचाई करनी चाहिए। जिस समय प्याज के पौधो में कंद बन रहे हो उस समय सिंचाई नियमित अन्तराल में लगातार करनी चाहिए। पानी की कमी के कारण कंद अच्छी तरह से बन नहीं पाती जिसके कारण पैदावार में कमी आती है। प्याज की फसल बूँद-बूँद सिंचाई करने से जल की बचत एवं उपज में भी बढ़ोतरी होती है। अतः सिचाई के लिए बूँद-बूँद सिंचाई विधि का चुनाव करना चाहिए।

प्याज की खुदाई, सूखाना एवं भण्डारण

खरीफ प्याज की फसल लगभग 130-140 दिन एवं रबी प्याज लगभग 90-100 दिनों में तैयार हो जाती हैं। पौधे पूरी तरह से सूख नहीं पाते इसलिए जैसे ही कंद बडे आकार के होने पर तथा 30-40 प्रतिषत पत्तियां जमीन पर गिरने लगे तो प्याज के कंद खोदने लायक हो जाते है। इसके लिए खुदाई से 7-10 दिन पहले सिंचाई बंद कर देनी चाहिए। इससे कंद अच्छे एवं ठोस हो जाते हैं । खुदाई करके इनको कतारों में रखकर सूखा देते हैं। पौधे अच्छी तरह सुखाने के लिए 3 दिन खेत में तथा एक सप्ताह छाये में सूखाने के बाद 2-2.5 से.मी. छोडकर पत्तियां काटने से भण्डारण में हानि कम होती है। सूखाते समय सडे हुए, कटे हुए, दो-फाडे, फूलों के डंठल वाली एवं अन्य खराब गांठे निकाल देते हैं। भण्डारण में सड़न कम करने के हेतु प्याज खुदाई से 10 -20 दिन पहले 0.1% कार्बेण्डाजिम का छिडकाव करें।

उपज

रबी में 300-350 एवं खरीफ में 150-200 कु. प्रति हेक्टेयर प्याज कन्दों की औसत ऊपज हो सकती है।

पौध संरक्षण

थ्रीप्स- कीट के प्रौढ व निम्फ पत्तियों का रस चूसकर फसल को नुकसान पहुचातें हैं। संक्रमित पत्तियाँ छोटी एवं ऊपर की तरफ मुड जाती हैं। अत्यधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ गिर कर सूख जाती हैं जिससें उपज में कमी आती है। अतः इसके नियंत्रण के लिए शुरुआत में नीम आधारित कीटनाशी या नीम का तेल 3-5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस. एल. 0.5 मि.ली. या प्रोपेनोफास 50 ई.सी. एक मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर फसल में छिडकाव करें।

आद्रगलन रोग- पौधशाला में पौधे का जमीन से लगा हुआ तना कमजोर होकर या गलकर सूख जाता है। इसके नियंत्रण के लिए बीजों को केप्टान या थायरम 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें। रोगग्रस्त पौधों को रोग से बचाने के लिए कापर आक्सीक्लोराइड 3 ग्राम मात्रा प्रति लीटर दवा पानी में मिला कर भूमि को नम करें।

बैंगनी धब्बा रोग- पत्तियों पर सफेद लम्बवत् गोलाकार बैंगनी रंग के धब्बे विकसित होते हैं जो पीले रंग की छल्लेनुमा आकृति से घिरे होते हैं। इसके नियंत्रण के लिए मैंकोजेब या क्लोरोथलोनील 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें एवं घोल में चिपकने वाला पदार्थ अवश्य मिलायें। साथ ही साथ खेत में सफाई, जल निकास की उचित व्यवस्था तथा बूँद-बूँद सिंचाई का प्रयोग करना चाहिए।

स्टेमफिलियम झुलसा रोग- पत्तियों के बीच में छोटे पीले से नारंगी रंग के चकते बन जाते हैं जो जल्दी ही लम्बी, गोलाकार से अण्डाकार आकार के बिखरे हुए धब्बे जो गुलाबी रंग की आकृति से घिरे होते हैं। इस प्रकार के धब्बे पत्ती के उपर से नीचे की और बढते हैं तथा अंत में आपस में मिलकर पत्तियों को झुलसा देते हैं। इसके नियंत्रण के लिए मैन्कोजेब या क्लोरोथलोनील 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर 10-15 दिनों के अन्तर पर छिड़काव 3-4 बार करें एवं घोल में चिपकने वाला पदार्थ अवश्य मिलायें।

♣♣♣

कॉलेज छात्राओं की दैनिक आदतों का उनके शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

प्रीत गिल- पीएच.डी. शोधार्थी
डॉ. मंजू मेहता- प्रोफेसर
संसाधन प्रबंधन एवं उपभोक्ता विज्ञान विभाग, आई.सी. कॉलेज ऑफ कम्युनिटी साइंस, सीसीएस एचएयू, हिसार, हरियाणा

आज के आधुनिक और प्रतिस्पर्धात्मक युग में कॉलेज जाने वाली छात्राओं की जीवनशैली में व्यापक परिवर्तन देखने को मिल रहा है। शिक्षा का बढ़ता दबाव, करियर की चिंता, तकनीकी साधनों का अत्यधिक उपयोग तथा बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ उनकी दिनचर्या को प्रभावित कर रही हैं। इन सभी कारकों का सीधा प्रभाव उनके शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। दैनिक आदतें जैसे संतुलित आहार, पर्याप्त नींद, नियमित व्यायाम, मानसिक संतुलन और स्वच्छता, स्वास्थ्य के प्रमुख आधार माने जाते हैं। यदि इन आदतों में असंतुलन आ जाए, तो इसका प्रभाव शरीर की कार्यक्षमता, ऊर्जा स्तर और समग्र स्वास्थ्य पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

कॉलेज छात्राओं की खान-पान की आदतों में भी उल्लेखनीय बदलाव आया है। व्यस्त दिनचर्या और समय की कमी के कारण कई छात्राएं नियमित भोजन नहीं कर पातीं और अक्सर नाश्ता छोड़ देती हैं। इसके स्थान पर वे जंक फूड, तले-भुने और पैकेज्ड खाद्य पदार्थों का अधिक सेवन करती हैं, जो स्वाद में तो अच्छे होते हैं लेकिन पोषण की दृष्टि से कमजोर होते हैं। इसके परिणामस्वरूप शरीर में आयरन, कैल्शियम और विटामिन्स की कमी हो सकती है, जिससे एनीमिया, कमजोरी, बाल झड़ना और त्वचा संबंधी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। दूसरी ओर, संतुलित और पौष्टिक आहार अपनाने से शरीर को आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त होते हैं, जिससे ऊर्जा बनी रहती है और रोगों से लड़ने की क्षमता भी बढ़ती है।

शारीरिक गतिविधि की कमी भी आज की छात्राओं में एक गंभीर समस्या बनती जा रही है। लंबे समय तक बैठकर पढ़ाई करना, ऑनलाइन क्लासेस में व्यस्त रहना और खाली समय में मोबाइल या लैपटॉप का उपयोग करना, शरीर को निष्क्रिय बना देता है। इस प्रकार की निष्क्रिय जीवनशैली के कारण मोटापा, मांसपेशियों में जकड़न, पीठ दर्द और हृदय संबंधी समस्याओं का खतरा बढ़ जाता है। यदि छात्राएं प्रतिदिन कुछ समय योग, व्यायाम, तेज चलना या खेल-कूद में लगाएँ, तो वे अपने शरीर को सक्रिय और फिट रख सकती हैं। नियमित शारीरिक गतिविधि न केवल शरीर को मजबूत बनाती है बल्कि मानसिक तनाव को भी कम करती है।

नींद का पैटर्न भी स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालता है। वर्तमान समय में देर रात तक जागना, मोबाइल या सोशल मीडिया का उपयोग करना और सुबह देर से उठना आम हो गया है। इस प्रकार की अनियमित नींद से शरीर को पर्याप्त आराम नहीं मिल पाता, जिससे थकान, चिड़चिड़ापन, ध्यान की कमी और हार्मोनल असंतुलन जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। पर्याप्त और नियमित नींद शरीर की मरम्मत और

पुनर्निर्माण की प्रक्रिया को सुचारु रूप से चलाती है, जिससे व्यक्ति अधिक ऊर्जावान और स्वस्थ महसूस करता है।

मानसिक तनाव भी छात्राओं के शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। पढ़ाई का दबाव, परीक्षा का भय, भविष्य की अनिश्चितता और सामाजिक अपेक्षाएँ तनाव को बढ़ा देती हैं। जब तनाव लंबे समय तक बना रहता है, तो यह शरीर पर नकारात्मक प्रभाव डालता है, जैसे सिरदर्द, उच्च रक्तचाप, पाचन संबंधी समस्याएँ और प्रतिरक्षा प्रणाली की कमजोरी। यदि छात्राएं समय प्रबंधन, ध्यान, योग और सकारात्मक सोच को अपनाएँ, तो वे तनाव को नियंत्रित कर सकती हैं और अपने स्वास्थ्य को बेहतर बनाए रख सकती हैं।

डिजिटल उपकरणों का अत्यधिक उपयोग भी आधुनिक जीवनशैली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है, जो स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। लंबे समय तक स्क्रीन के सामने रहने से आँखों में जलन, सिरदर्द, नींद में बाधा तथा गर्दन और पीठ में दर्द जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इसके अलावा, यह आदत शारीरिक गतिविधि को भी कम कर देती है, जिससे जीवनशैली अधिक निष्क्रिय हो जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि छात्राएं अपने स्क्रीन टाइम को सीमित करें और बीच-बीच में विश्राम लें।

इसके अतिरिक्त, व्यक्तिगत स्वच्छता और मासिक धर्म स्वच्छता भी छात्राओं के स्वास्थ्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्वच्छता की अनदेखी करने से संक्रमण और अन्य स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। नियमित स्नान, साफ कपड़े पहनना और उचित स्वच्छता बनाए रखना स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक है। साथ ही, कुछ छात्राएं तनाव या सामाजिक प्रभाव के कारण धूम्रपान या अन्य नशे की आदतों की ओर भी आकर्षित हो सकती हैं, जो उनके स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक हैं और दीर्घकालिक बीमारियों का कारण बन सकती हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि कॉलेज छात्राओं की दैनिक आदतें उनके शारीरिक स्वास्थ्य को सीधे और गहराई से प्रभावित करती हैं। असंतुलित जीवनशैली जहाँ स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म देती है, वहीं संतुलित और स्वस्थ आदतें एक मजबूत और ऊर्जावान जीवन की नींव रखती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि छात्राएं अपनी दिनचर्या में सकारात्मक बदलाव लाएँ, संतुलित आहार लें, नियमित व्यायाम करें, पर्याप्त नींद लें और मानसिक संतुलन बनाए रखें। इस प्रकार वे न केवल वर्तमान में स्वस्थ रह सकती हैं, बल्कि अपने भविष्य को भी अधिक सुरक्षित और सशक्त बना सकती हैं।

♣♣♣

अधिकतम लाभ और उच्च फसल चक्र सघनता के लिए अगेती सब्जी मटर की वैज्ञानिक खेती

रेहान अंजुम- शोध छात्र, **डॉ जी. सी. यादव-** प्राध्यापक, **शुभम पटेल** एवं **रमेश खरवार-** शोध छात्र,
उद्यानिकी (सब्जी विज्ञान) विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, विद्या विहार, लखनऊ, (उ० प्र०)
पियूष प्रताप कुशवाहा- शोध छात्र, सब्जी विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय सबौर, भागलपुर, (बिहार)

मटर (*Pisum sativum*) एक प्रमुख शीतकालीन सब्जी फसल है, जो 60 से 70 दिनों में तैयार हो जाती है। अगेती मटर की खेती किसानों के लिए विशेष रूप से लाभकारी होती है, क्योंकि अगेती मटर की खेती से एक ही खेत में एक वर्ष में 3 से अधिक सब्जी फसल उगाया जा सकता है। यदि किसान अगेती मटर की उन्नत एवं वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाते हैं, तो वे अधिकतम उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। इससे उन्हें बेहतर बाजार मूल्य, अधिक लाभ और उच्च फसल चक्र सघनता हासिल होती है। इस प्रकार, अगेती मटर की खेती न केवल किसानों की आय बढ़ाने में सहायक है, बल्कि फसल चक्र सघनता को भी तेज़ी से बढ़ाती है और निरंतर उत्पादन सुनिश्चित करती है।

जलवायु एवं भूमि चयन

तापमान: यह एक शीतकालीन फसल है, जिसके लिए 10 से 18 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त माना जाता है। इसके बीज के अंकुरण के लिए न्यूनतम तापमान लगभग 5 डिग्री सेल्सियस आवश्यक होता है, जबकि अंकुरण के लिए आदर्श (अनुकूल) तापमान 22 डिग्री सेल्सियस होता है। ठंडा और समशीतोष्ण जलवायु इसकी वृद्धि और विकास के लिए सबसे उपयुक्त होती है। अत्यधिक गर्मी या पाला फसल की वृद्धि एवं उत्पादन को प्रभावित कर सकते हैं। मटर की अच्छी पैदावार के लिए संतुलित नमी, अच्छी जल निकासी वाली मिट्टी तथा पर्याप्त धूप आवश्यक होती है। अनुकूल जलवायु एवं उचित प्रबंधन के साथ किसान बेहतर गुणवत्ता और अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

भूमि: मटर की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में की जा सकती है, किन्तु इसकी बेहतर वृद्धि के लिए अच्छी जल निकासी वाली, कार्बनिक पदार्थों से समृद्ध, भुरभुरी दोमट मिट्टी वाली भूमि सबसे उपयुक्त मानी जाती है। मृदा का pH मान 5.5 से 6.0 के बीच होना चाहिए, जो फसल के पोषक तत्वों के समुचित अवशोषण में सहायक होता है। जलभराव वाली मिट्टी मटर की फसल के लिए हानिकारक होती है, क्योंकि इससे जड़ों का विकास प्रभावित होता है और रोगों की संभावना बढ़ जाती है। अतः खेत की उचित तैयारी और जल निकासी का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। उचित मृदा चयन एवं संतुलित पोषण प्रबंधन के साथ मटर की फसल से उच्च गुणवत्ता एवं अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

उन्नत एवं अगेती किस्मो का चयन

अगेती किस्मों का चयन इसलिए किया जाता है, ताकि किसान कम समय में फसल तैयार कर अधिक लाभ प्राप्त कर सकें। अगेती मटर की बुवाई का उपयुक्त समय मध्य सितम्बर से 15 अक्टूबर तक माना जाता है। अगेती मटर कम अवधि में तैयार होकर जल्दी तुड़ाई के लिए उपलब्ध हो जाती है, जिससे इसे बाजार में समय से पहले बेचा जा

ISSN: 3049-2211

सकता है। इस अवधि में बाजार में मटर की उपलब्धता कम होती है, जबकि मांग अधिक रहती है, विशेषकर विवाह एवं अन्य सामाजिक कार्यक्रमों के कारण। परिणामस्वरूप, किसानों को बेहतर मूल्य और अधिक लाभ प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त, अगेती फसल की तुड़ाई नवम्बर–दिसम्बर तक पूर्ण हो जाती है, जिससे उसी खेत में जायद फसलें, जैसे प्याज आदि, आसानी से लगाई जा सकती हैं। इससे फसल चक्र सघनता बढ़ती है और भूमि का अधिकतम उपयोग संभव होता है। इस प्रकार, अगेती मटर की खेती न केवल अधिक लाभकारी है, बल्कि यह किसानों को वर्ष भर निरंतर उत्पादन एवं आय प्राप्त करने में भी सहायक होती है।

आर्केल (Arkel): यह इंग्लैंड से लाई गई एक अत्यंत लोकप्रिय विदेशी अगेती मटर की किस्म है, जिसे भारत में बड़े क्षेत्रफल में उगाया जाता है। इसकी औसत उपज लगभग 5 टन प्रति हेक्टेयर होती है। इस किस्म के पौधे कॉलर रॉट (तना सड़न) रोग के प्रति संवेदनशील होते हैं, इसलिए रोग प्रबंधन के लिए विशेष सावधानी बरतना आवश्यक है।

काशी नंदिनी (Kashi Nandini): यह किस्म रोग प्रतिरोधी है जो बुवाई के बाद लगभग 60–65 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी फलियां एक साथ परिपक्व होती हैं, जिससे तुड़ाई कार्य आसान और कम समय में पूरा किया जा सकता है। एक साथ फलियां तैयार होने के कारण यह किस्म व्यावसायिक खेती के लिए विशेष रूप से उपयुक्त मानी जाती है, क्योंकि इससे श्रम लागत कम होती है और समय पर बाजार में आपूर्ति संभव होती है।

ए पी 3 (AP-3): AP-3 मटर अगेती (जल्दी पकने वाली) मटर की एक प्रसिद्ध किस्म है, जो बुवाई के लगभग 60–70 दिनों में तुड़ाई के लिए तैयार हो जाती है। यह किस्म प्रति फली 6–7 दानों के लिए जानी जाती है, जो इसकी एक प्रमुख विशेषता है। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए इसकी बुवाई सितम्बर के अंतिम सप्ताह में करना उपयुक्त रहता है। उचित समय पर बुवाई करने से फसल का विकास बेहतर होता है और उत्पादन में वृद्धि होती है। यह किस्म लगभग 30 से 40 क्विंटल प्रति एकड़ हरी फलियों की उपज देने में सक्षम है।

बुवाई का समय

उत्तरी भारत में अगेती मटर की बुवाई का उपयुक्त समय मध्य सितम्बर से 15 अक्टूबर तक माना जाता है। समय पर बुवाई करने से फसल शीघ्र तैयार हो जाती है, जिससे किसान कम समय में अच्छी आय प्राप्त कर सकते हैं। समय पर बुवाई करने से पौधों की वृद्धि अनुकूल जलवायु में होती है, जिससे उत्पादन एवं गुणवत्ता दोनों बेहतर मिलते हैं। इसके साथ ही, फसल जल्दी बाजार में पहुंचने के कारण किसानों को अधिक मूल्य प्राप्त होता है। इस प्रकार, उचित समय पर बुवाई अगेती मटर की सफल खेती और अधिक लाभ प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण आधार है।

भूमि की तैयारी

मटर की फसल के लिए भूमि की अच्छी तैयारी अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए खेत की 2–3 बार अच्छी तरह जुताई करनी चाहिए, ताकि मिट्टी भुरभुरी एवं समतल बन जाए। इससे मटर की जड़ों का विकास और फैलाव बेहतर होता है, तथा वे वायुमंडलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण में सक्षम होती हैं।

प्रारंभिक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए, इसके बाद 1–2 बार हैरो चलाकर मिट्टी को अच्छी तरह भुरभुरा कर लें। अंत में एक जुताई रोटावेटर से करने पर खेत अच्छी तरह तैयार हो जाता है। अंतिम जुताई के समय 10–15 टन प्रति हेक्टेयर सड़ी हुई गोबर की खाद मिलाना चाहिए, जिससे मिट्टी की उर्वरता एवं संरचना में सुधार होता है। उचित भूमि तैयारी के साथ मटर की फसल का अंकुरण, वृद्धि एवं उत्पादन बेहतर होता है, जिससे किसानों को अधिक लाभ प्राप्त होता है।

बीज दर और बुवाई विधि

अगेती सब्जी मटर की बीज दर लगभग 100–120 किग्रा प्रति हेक्टेयर होती है। बेहतर अंकुरण के लिए बीजों को बोने से पहले रात भर पानी में भिगोना लाभकारी रहता है। इससे अंकुरण प्रतिशत में सुधार होता है और पौधों की प्रारंभिक वृद्धि बेहतर होती है।

अगेती मटर की बुवाई समतल या उठी हुई क्यारियों में छिड़काव विधि अथवा डिब्लिंग विधि द्वारा की जा सकती है। इसकी बुवाई पंक्तियों में की जाती है, जिसमें पंक्ति से पंक्ति की दूरी लगभग 30 सेमी तथा पौधे से पौधे की दूरी 5–10 सेमी रखी जाती है। बीज को लगभग 2.5 सेमी गहराई पर बोना चाहिए। अधिक गहराई या बहुत उथली बुवाई दोनों ही अंकुरण को प्रभावित कर सकते हैं।

सभी परिस्थितियों में मटर की बुवाई पर्याप्त नमी में करनी चाहिए। यदि खेत में नमी कम हो तो पलेवा करके उपयुक्त नमी सुनिश्चित कर लेनी चाहिए, जिससे फसल का जमाव समान और अच्छा हो सके।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

मटर की फसल में बेहतर उत्पादन के लिए संतुलित खाद एवं उर्वरक प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। चूँकि मटर एक दलहनी फसल है, यह अपनी नाइट्रोजन की अधिकांश आवश्यकता वायुमंडल से सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण के माध्यम से पूरी कर लेती है। इस कारण इसे कम मात्रा में नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है, जबकि प्रारंभिक वृद्धि के लिए थोड़ी मात्रा में नाइट्रोजन लाभकारी रहती है। इसके साथ ही

फॉस्फोरस और पोटाश का उचित प्रबंधन जड़ों के विकास, फूल-फल बनने और उपज बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संतुलित उर्वरक प्रयोग, जैविक खाद का उपयोग तथा समय पर पोषण प्रबंधन अपनाकर मटर की फसल से उच्च गुणवत्ता एवं अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। मटर के लिए खाद एवं उर्वरक प्रबंधन के मुख्य बिंदु नीचे दिए गए हैं:

आधार खाद - बुवाई के समय संतुलित मात्रा में पोषक तत्व देना आवश्यक है:

- **गोबर की खाद (FYM/Compost):** बुवाई से 3-4 सप्ताह पहले 10-15 टन प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में अच्छी तरह मिलाकर जुताई करें।
- **उर्वरक की मात्रा (प्रति हेक्टेयर):**
  - नाइट्रोजन: 20-25 किग्रा (सिर्फ शुरुआती विकास के लिए)।
  - फास्फोरस: 40-60 किग्रा (जड़ों के विकास के लिए बहुत आवश्यक) ।
  - पोटाश: 30-40 किग्रा (बीज की गुणवत्ता के लिए)।
- **विकल्प:** डीएपी (DAP) का अधिक उपयोग करने के बजाय, सिंगल सुपर फास्फेट (SSP) का उपयोग करना बेहतर है क्योंकि इसमें सल्फर (12%) भी होता है, जो दलहनी फसलों के लिए आवश्यक है।

जल प्रबंधन

मटर की फसल में अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, लेकिन यदि मृदा में पर्याप्त नमी न हो तो बुवाई से पहले एक हल्की सिंचाई (पलेवा) करना आवश्यक होता है, जिससे मिट्टी में उचित नमी बनी रहे। इसके बाद आवश्यकता अनुसार 10–15 दिनों के अंतराल पर हल्की सिंचाई की जा सकती है। ध्यान रहे कि अधिक पानी देने से फसल को हानि हो सकती है। मटर की फसल में सिंचाई के महत्वपूर्ण चरण फूल आने, फल बनने (फल सेटिंग) तथा दाना भरने के समय होते हैं। इन अवस्थाओं पर उचित नमी बनाए रखने से फलियों की गुणवत्ता और उत्पादन दोनों में वृद्धि होती है।

अंतरकृषि और खरपतवार नियंत्रण

मटर की फसल में खरपतवार नियंत्रण के लिए प्रारंभिक अवस्था में एक बार निराई-गुड़ाई या हाथ से खरपतवार निकालना आवश्यक होता है। इससे मिट्टी में वायु संचार बेहतर होता है और पौधों की वृद्धि तेज़ी से होती है। रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण के लिए बुवाई के 48–72 घंटे के भीतर पेंडीमेथालिन (Pendimethalin) सक्रिय तत्व का छिड़काव किया जा सकता है। इसे 500–1000 लीटर पानी में घोलकर समान रूप से खेत में छिड़कना चाहिए। इस प्रक्रिया से फसल को शुरुआती अवस्था में खरपतवारों की प्रतिस्पर्धा से बचाया जा सकता है, जिससे पौधों का स्वस्थ विकास सुनिश्चित होता है और उत्पादन में वृद्धि होती है

रोग और किट प्रबंधन

मटर की फसल में कई प्रकार के रोग व कीट पाए जाते जो पौधे को नुकसान पहुंचाते हैं, जो उपज और गुणवत्ता दोनों को प्रभावित करते हैं। प्रमुख रोग और किट और उनका प्रबंधन निम्नलिखित हैं—

- **जड़ सड़न रोग (Root Rot)** – इसमें पौधों की जड़ें सड़ जाती हैं और पौधा सूखने लगता है।

नियंत्रण : 0.2 % बाविस्टिन का घोल पौधो की जड़ो में डालकर नियंत्रित किया जाता है|

- **पाउडरी मिल्ड्यू (Powdery Mildew)** – पत्तियों पर सफेद पाउडर जैसी परत बन जाती है।

नियंत्रण : 0.1 % कैराथेन का छिडकाव

- **झुलसा रोग (Blight)** – पत्तियों एवं तनों पर धब्बे बनकर पौधा सूखने लगता है।

नियंत्रण : 0.2 % मैनकोज़ेब का छिडकाव

- **मटर फली छेदक (Pea Pod Borer)** – यह कीट फलियों में छेद करके दानों को खा जाता है, जिससे उपज घट जाती है।

नियंत्रण : 0.2 % थायोडान का उपयोग फूलो के आने के समय किया जाता है|

- **लीफ माइनर (Leaf Miner)** – पत्तियों के अंदर सुरंग बनाकर उन्हें नुकसान पहुंचाता है।

नियंत्रण : इमिडाक्लोप्रिड 17.8% SL- 0.3–0.5 मिली. प्रति लीटर . पानी में घोलकर छिड़काव करें।

- **एफिड/चेपा (Aphid)** – पौधों का रस चूसकर उन्हें कमजोर कर देता है और वायरस रोग फैलाने में भी सहायक होता है।

नियंत्रण : 0.1 % क्ुइनल्फोसके छिडकाव से 15 दिनों के अंदर नियंत्रण किया जाता है|

- **थ्रिप्स (Thrips)** – पत्तियों और कोमल भागों से रस चूसते हैं, जिससे पत्तियाँ मुड़ जाती हैं।

नियंत्रण : एसिटामिप्रिड 20% SP – 0.3–0.5 ग्राम प्रति लीटर पानी।

- **सफेद मक्खी (Whitefly)** – पौधों का रस चूसती है और वायरस रोग फैलाने का कार्य करती है।

नियंत्रण : थायमेथोक्साम 25% WG – 0.25 ग्राम प्रति लीटर पानी।

ISSN: 3049-2211

कटाई और उत्पादन

फसल की बुवाई के लगभग 55 से 65 दिन बाद अगेती मटर की हरी फलि की तुड़ाई प्रारंभ कर देनी चाहिए। हरी फलियों की तुड़ाई समय-समय पर 2–3 बार की जानी चाहिए, ताकि सभी फलियाँ सही अवस्था में तोड़ी जा सकें और उनकी गुणवत्ता बनी रहे।

अगेती मटर की औसत उपज लगभग 7.5 से 10 टन प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है। उचित प्रबंधन, समय पर तुड़ाई और बेहतर कृषि तकनीक अपनाकर उत्पादन एवं लाभ दोनों में वृद्धि की जा सकती है।

उच्च फसल चक्र सघनता के लिए फसल क्रम

अगेती मटर की खेती से खेत कम समय में खाली हो जाता है, जिससे की एक वर्ष में 3-4 फसले ली जा सकती है और किसान अन्य फसले उगाकर अधिक आय प्राप्त कर सकता है|

- धान – अगेती मटर – मूंग
- मक्का – अगेती मटर – सब्ज़ी फसल
- धान – मटर – ग्रीष्मकालीन सब्ज़ियाँ
- भिण्डी- मटर- प्याज़

निष्कर्ष

अगेती मटर की वैज्ञानिक तकनीक अपनाकर किसान कम समय में अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकता है, जिससे उसे बेहतर आर्थिक लाभ मिलता है। यह फसल जल्दी तैयार हो जाती है, इसलिए इसकी तुड़ाई के तुरंत बाद दूसरी फसल की बुवाई की जा सकती है, जिससे भूमि का अधिकतम उपयोग संभव होता है। मटर की फसल मृदा में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करती है, जिससे मिट्टी की उर्वरता में सुधार होता है और अगली फसल को अधिक उपज प्राप्त होती है। इस प्रकार मटर फसल फसल चक्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।इसके अतिरिक्त, यह फसल जल्दी तैयार होने के कारण फसल चक्र की सघनता बढ़ाने में भी सहायक होती है, विशेषकर छोटे और सीमांत किसानों के लिए जिनके संसाधन सीमित होते हैं।

इस प्रकार, अगेती मटर एक वर्ष में 3–4 फसलों के उत्पादन में सहायक होकर न केवल किसानों की आय बढ़ाती है, बल्कि देश के कुल कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के साथ-साथ मृदा की उर्वरता को भी बनाए रखती है, जिससे सतत एवं निरंतर उत्पादन संभव होता है।

♣♣♣

कटहल के बीज और डंठल की सब्ज़ी

एक पौष्टिक, पारंपरिक और “नो-वेस्ट” देसी व्यंजन

सलोनी कुमारी- तकनीकी सहायक ,कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, पूसा, समस्तीपुर, बिहार
डा. रोहित मौर्य- विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यानिकी), कृषि विज्ञान केन्द्र, तुर्की, मुजफ्फरपुर
डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार।

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ भोजन केवल पेट भरने का साधन नहीं बल्कि संस्कृति, परंपरा और जीवनशैली का महत्वपूर्ण हिस्सा है। हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्रों में भोजन के हर हिस्से का उपयोग करने की परंपरा रही है। इसी परंपरा का एक सुंदर उदाहरण है कटहल के बीज और उसके डंठल की सब्ज़ी।

अक्सर कटहल का केवल गूदा (फल) ही उपयोग में लिया जाता है और उसके बीज और डंठल को बेकार समझकर फेंक दिया जाता है। लेकिन यह धारणा पूरी तरह गलत है। वास्तव में ये दोनों भाग अत्यंत पौष्टिक, स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक होते हैं।

आज के समय में जब “Zero Waste Cooking” और “Sustainable Food Practices” की बात की जाती है, तब यह पारंपरिक सब्ज़ी और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। ग्रामीण भारत में यह व्यंजन सदियों से बनाया जाता रहा है और आज भी इसकी लोकप्रियता कम नहीं हुई है।

“कचरा नहीं, खजाना है – कटहल का हर हिस्सा खाना है!”

कटहल के बीज और डंठल का परिचय

(क) कटहल के बीज

कटहल के बीज आकार में बड़े, कठोर और सफेद रंग के होते हैं। इन्हें उबालकर या भूनकर खाया जाता है। इनका स्वाद हल्का मीठा और स्टार्चयुक्त होता है।

(ख) कटहल का डंठल

धनतल कटहल के पौधे का वह हिस्सा है जो फल को पेड़ से जोड़ता है। यह थोड़ा कठोर होता है लेकिन पकने के बाद बेहद स्वादिष्ट और फाइबर युक्त हो जाता है।

ISSN: 3049-2211

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व

ग्रामीण भारत में भोजन की एक विशेष संस्कृति रही है – "कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता"। पुराने समय में किसान और ग्रामीण लोग प्राकृतिक संसाधनों का पूरा उपयोग करते थे।

कटहल के बीज और डंठल की सब्ज़ी बिहार, झारखंड, पूर्वी उत्तर प्रदेश और बंगाल के ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत लोकप्रिय रही है। यह व्यंजन विशेष रूप से मानसून और गर्मी के मौसम में बनाया जाता है, जब कटहल की उपलब्धता अधिक होती है।

यह भोजन न केवल भूख मिटाता है बल्कि परिवार को कम लागत में पौष्टिक आहार भी देता है।

"पुरानी परंपरा, नई सोच – हर हिस्सा बने भोजन का भोज!"

सामग्री

इस पारंपरिक सब्ज़ी को बनाने के लिए निम्न सामग्री की आवश्यकता होती है:

- ✓ कटहल के बीज
- ✓ कटहल का डंठल
- ✓ प्याज
- ✓ टमाटर
- ✓ अदरक और लहसुन
- ✓ हल्दी पाउडर
- ✓ लाल मिर्च पाउडर
- ✓ धनिया पाउडर
- ✓ जीरा
- ✓ सरसों का तेल
- ✓ नमक स्वादानुसार
- ✓ हरा धनिया (सजावट के लिए)

बनाने की विधि

चरण 1: तैयारी

सबसे पहले कटहल के बीजों को पानी में उबालकर उनका छिलका हटा लिया जाता है। डंठल को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर अच्छी तरह धो लिया जाता है।

चरण 2: मसाला तैयार करना

कड़ाही में सरसों का तेल गर्म किया जाता है। इसमें जीरा डाला जाता है। फिर प्याज, अदरक और लहसुन को सुनहरा होने तक भुना जाता है।

चरण 3: सब्ज़ी पकाना

अब टमाटर और मसाले (हल्दी, लाल मिर्च, धनिया पाउडर) डालकर अच्छे से भूनते हैं। इसके बाद उबले हुए कटहल के बीज और कटे हुए डंठल को मिलाया जाता है।

चरण 4: पकने की प्रक्रिया

थोड़ा पानी डालकर इसे धीमी आंच पर पकाया जाता है जब तक सब्ज़ी नरम और स्वादिष्ट न हो जाए।

चरण 5: परोसना

अंत में हरा धनिया डालकर इसे चावल या रोटी के साथ परोसा जाता है।

पोषण मूल्य

कटहल के बीज और डंठल की सब्ज़ी एक अत्यंत पौष्टिक भोजन है।

- ❖ **ऊर्जा (Calories):** लगभग 180–250 किलो कैलोरी प्रति प्लेट।
- ❖ **प्रोटीन:** कटहल के बीजों में अच्छी मात्रा में प्रोटीन पाया जाता है।
- ❖ **कार्बोहाइड्रेट:** शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है।
- ❖ **फाइबर:** डंठल पाचन तंत्र को मजबूत करता है।
- ❖ **विटामिन्स:** विटामिन A, C और B समूह।
- ❖ **मिनरल्स:** आयरन, कैल्शियम, पोटैशियम।

यह एक लो-फैट और हाई-फाइबर भोजन है, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी है।

स्वास्थ्य लाभ

(1) पाचन सुधारता है

डंठल में मौजूद फाइबर पाचन क्रिया को बेहतर बनाता है और कब्ज की समस्या को दूर करता है।

(2) ऊर्जा प्रदान करता है

कटहल के बीज शरीर को प्राकृतिक ऊर्जा प्रदान करते हैं, जिससे थकान कम होती है।

(3) हृदय स्वास्थ्य के लिए अच्छा

इसमें कम वसा और अधिक फाइबर होने के कारण यह हृदय के लिए लाभकारी है।

(4) किफायती और पौष्टिक भोजन

यह सब्ज़ी कम लागत में तैयार हो जाती है लेकिन पोषण में किसी भी महंगे भोजन से कम नहीं है।

(5) रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है

इसमें मौजूद विटामिन और खनिज शरीर की इम्यूनिटी को मजबूत करते हैं।

पर्यावरणीय महत्व

आज के समय में खाद्य अपशिष्ट (food waste) एक बड़ी समस्या है। ऐसे में कटहल के बीज और डंठल का उपयोग Zero Waste Cooking का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

ISSN: 3049-2211

यह हमें सिखाता है कि प्रकृति के किसी भी हिस्से को बेकार नहीं समझना चाहिए।

"फेंकना नहीं, सोच समझकर खाना है – प्रकृति को बचाना है!"

सामाजिक और आर्थिक महत्व

- ✓ यह ग्रामीण परिवारों के लिए सस्ता और पौष्टिक भोजन है।
- ✓ खाद्य अपशिष्ट को कम करता है।
- ✓ स्थानीय खाद्य परंपराओं को बढ़ावा देता है।
- ✓ महिलाओं को घर में पोषणयुक्त खाना बनाने में सहायता करता है।
- ✓ कृषि उत्पादों का पूरा उपयोग सुनिश्चित करता है।

सावधानियाँ एवं रखरखाव (Precautions and Storage)

कटहल के बीज और डंठल की सब्ज़ी बनाते और सेवन करते समय कुछ सावधानियाँ रखना आवश्यक है। जिन लोगों को कटहल या किसी भी प्रकार की फाइबर युक्त सब्ज़ियों से एलर्जी (allergy) होती है, उन्हें इसका सेवन नहीं करना चाहिए या डॉक्टर की सलाह लेनी चाहिए। बीजों को हमेशा अच्छी तरह उबालकर ही उपयोग करना चाहिए ताकि वे पूरी तरह नरम और पचने योग्य हो जाएँ। डंठल को साफ करके और बाहरी कठोर रेशों को हटाकर ही पकाना चाहिए। अधिक मात्रा में सेवन से बचना चाहिए क्योंकि यह भारी (heavy) भोजन होता है और कुछ लोगों में गैस या अपच की समस्या हो सकती है। सब्ज़ी को स्वच्छ बर्तनों में ही पकाएँ और लंबे समय तक कमरे के तापमान पर न रखें। इसे सुरक्षित रखने के लिए एयरटाइट डिब्बे में फ्रिज में 1–2 दिन तक रखा जा सकता है और दोबारा उपयोग करते समय अच्छी तरह गर्म करना चाहिए।

निष्कर्ष

कटहल के बीज और डंठल की सब्ज़ी केवल एक व्यंजन नहीं है, बल्कि यह भारतीय ग्रामीण जीवन, परंपरा और समझदारी का प्रतीक है। यह हमें सिखाता है कि प्रकृति द्वारा दी गई हर वस्तु का उपयोग करना चाहिए और उसे व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए। यह व्यंजन स्वाद, स्वास्थ्य और पर्यावरण – तीनों के लिए लाभकारी है। आज जब दुनिया "Sustainable Living" की ओर बढ़ रही है, तब ऐसे पारंपरिक व्यंजन और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

■■■

फूलगोभी की उन्नत खेती

डा. रोहित मौर्य- विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यानिकी), कृषि विज्ञान केन्द्र, तुर्की, मुजफ्फरपुर
सलोनी कुमारी- तकनीकी सहायक ,कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, पूसा, समस्तीपुर, बिहार
डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार।

गोभीवर्गीय सब्जियों में फूलगोभी का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी खेती मुख्य रूप से श्वेत, अविकसित व गठे हुए पुष्प् पुंज के उत्पादन हेतु की जाती है। यह भारत की प्रमुख सब्जी है फूलगोभी की खेती पूरे वर्ष में की जाती है। इससे किसान अत्यधिक लाभ उठा सकते हैं। इसको सब्जी, सूप और आचार के रूप में प्रयोग करते हैं। इसमें विटामिन बी पर्याप्त मात्रा के साथ-साथ प्रोटीन भी अन्य सब्जियों के तुलना में अधिक पायी जाती है।

जलवायु

फूलगोभी के लिए ठंडी और आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है यदि दिन अपेक्षाकृत छोटे हों तो फूल की बढ़ोत्तरी अधिक होती है फूल तैयार होने के समय तापमान अधिक होने से फूल पत्तेदार और पीले रंग के हो जाते हैं अगेती जातियों के लिए अधिक तापमन और बड़े दिनों की आवश्यकता होती है। 20-25 डिग्री सेल्सियस तापमान पौधों के अधिक समुचित विकास और फूलों के उत्तम गुणों के लिए सर्वोत्तम माना गया है, फूलगोभी को गर्म दशाओं में उगाने से सब्जी का स्वाद तीखा हो जाता है। फूलगोभी की खेती प्रायः जुलाई से शुरू होकर अप्रैल तक होती है।

भूमि

जिस भूमि का पी.एच. मान 5.5 से 7 के मध्य हो वह फूलगोभी के लिए उपयुक्त मानी गई है। अगेती फसल के लिए अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट मिट्टी तथा पिछेती के लिए दोमट या चिकनी मिट्टी उपयुक्त रहती है। साधारणतया फूलगोभी की खेत विभिन्न प्रकार की भूमियों में की जा सकती है। भूमि जिसमें पर्याप्त मात्रा में जैविक खाद उपलब्ध हो इसकी खेती के लिए अच्छी होती है। हल्की रचना वाली भूमि में पर्याप्त मात्रा में जैविक खाद डालकर इसकी खेती की जा सकती है।

खाद एवं उर्वरक

फूलगोभी की अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए खेत में पर्याप्त मात्रा में जीवांश का होना अत्यंत आवश्यक है। खेत में 20-25 तन सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट रोपाई के 3-4 सप्ताह पूर्व देना चाहिए। इसके अतिरिक्त 120 किलोग्राम नाइट्रोजन, 60 किलोग्राम फास्फोरस, एवं 40 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा एवं फास्फोरस मात्रा अंतिम जुताई या प्रतिरोपण से पहले खेत में अच्छी तरह मिला देना चाहिए तथा शेष आधी नाइट्रोजन की मात्रा दो बराबर भागों में बांटकर खड़ी फसल में 30 से 45 दिन बाद उपपरिवेश देना चाहिए।

खेत की तैयारी

पहले खेत को पलेवा करें जब भूमि जुताई योग्य हो जाए तब उसकी जुताई 2 बार मिट्टी पलटने वाले हल से करें इसके बाद दो बार कल्टीवेटर चलाएँ और प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाएं।

ISSN: 3049-2211

उन्नतशील प्रजातियां फूलगोभी की मौसम के आधार पर तीन प्रकार की प्रजातियाँ होती है। जैसे कि अगेती, मध्यम और पछेती प्रजातियाँ पायी जाती है।

अगेती प्रजातियाँ

पूसा दिपाली, अर्ली कुवारी, अर्ली पटना, पन्त गोभी-2, पन्त गोभी-3, पूसा कार्तिक, पूसा अर्ली सेन्थेटिक पटना अगेती, सेलेक्सन 327 एवं सेलेक्सन 328 है।

मध्यम प्रकार की प्रजातियाँ

पन्त शुभ्रा, इम्प्रूव जापानी, हिसार 114, एस-1, नरेन्द्र गोभी 1, पंजाब जाइंट, अर्ली स्नोाबल, पूसा हाइब्रिड 2, पूसा अगहनी, एवं पटना मध्यम,

पछेती प्रजातियाँ

स्नोबाल 16, पूसा स्नोबाल 1, पूसा स्नोबाल 2, पूसा के 1, दानिया, स्नोकिंग, पूसा सेन्थेटिक, विश्व भारती, बनारसी मागी, जाइंट स्नोबाल

बीज दर, बुआई का समय एवं विधि

अगेती किस्मों का बीज दर 600-700 ग्राम और मध्यम एवं पिछेती किस्मों का बीर दर 350-400 ग्राम प्रति हेक्टेयर है। अगेती किस्मों की बुआई 15 जून से जुलाई मध्य तक कर देना चाहिए। मध्य एवं पिछेती किस्मों की बुआई मध्य अगस्त से पूरे अक्टूबर तक कर देनी चाहिए।

कैसे करें पौधे तैयार ?

स्वस्थ पौधे तैयार करने के लिए भूमि तैयार होने पर 0.75 मीटर चौड़ी, 5 से 10 मीटर लम्बी, 15 से 20 सेंटीमीटर ऊँची क्यारियां बना लेनी चाहिए। दो क्यारियों के बीच में 50 से 60 सेंटीमीटर चौड़ी नाली पानी देने तथा अन्य क्रियाओं करने के लिए रखनी चाहिए। पौध डालने से पहले 5 किलो ग्राम गोबर की खाद प्रति क्यारी मिला देनी चाहिए तथा 10 ग्राम म्यूरेट आफ पोटाश व 5 किलो यूरिया प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से क्यारियों में मिला देनी चाहिए। पौध 2.5 से 5 सेंटीमीटर दूरी की कतारों में डालना चाहिए। क्यारियों में बीज बुवाई के बाद सड़ी गोबर की खाद से बीज को ढक देना चाहिए। इसके 1 से 2 दिन बाद नालियों में पानी लगा देना चाहिए या हजारे से पानी क्यारियों देना चाहिए।

कैसे करें बीज बुवाई ?

एक हेक्टेयर खेत में 450 ग्राम से 500 ग्राम बीज की बुवाई करें। पहले 2 से 3 ग्राम कैप्टन या ब्रैसिकाल प्रति किलोग्राम बीज की दर से शोधित कर लेना चाहिए। इसके साथ ही साथ 160 से 175 मिली लीटर को 2.5 लीटर पानी में मिलाकर प्रति 20 वर्ग मीटर के हिसाब नर्सरी में भूमि शोधन करना चाहिए। फूलगोभी की रोपाई फसल समय के अनुसार रोपाई एवं बुवाई की जाती है। जैसे अगेती में मध्य जून से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक पौध डालकर पौध तैयार करके 45 सेंटीमीटर पंक्ति से पंक्ति और 45 सेंटीमीटर पौधे से पौधे की दूरी पर पौध डालने के 30 दिन बाद रोपाई करनी चाहिए। मध्यम फसल में अगस्त के मध्य में पौध डालना चाहिए। पौध तैयार होने के बाद पौध डालने के 30 दिन बाद 50 सेंटी मीटर पंक्ति से पंक्ति और 50 सेंटीमीटर पौधे से पौधे की दूरी पर रोपाई करनी चाहिए। पिछेती फसल में मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक पौध डाल देना चाहिए। 30 दिन बाद पौध तैयार होने पर रोपाई 60 सेंटीमीटर पंक्ति से पंक्ति और 60 सेंटीमीटर पौधे से पौधे की दूरी पर रोपाई करनी चाहिए। खाद एवं उर्वरक फूलगोभी की अधिक उपज लेने के लिए भूमि में पर्याप्त मात्रा में खाद डालना अत्यंत आवश्यक है। मुख्य मौसम की फसल को अपेक्षाकृत अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है इसके लिए एक है भूमि में 35-40 कुंतल गोबर की अच्छे तरीके से सड़ी हुई खाद एवं 1 कुंतल नीम की खली डालते है। रोपाई के 15 दिनों के बाद वर्मीवाश का प्रयोग किया जाता है। रासायनिक खाद का प्रयोग करना हो 120 किलोग्राम नाइट्रोजन, 60 किलोग्राम फास्फोरस तथा 60 किलोग्राम पोटाश तत्व के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाई

रोपाई के तुरंत बाद सिंचाई करें अगेती फसल में बाद में एक सप्ताह के अंतर से, देर वाली फसल में 10-15 दिन के अंतर से सिंचाई करें । यह ध्यान रहें कि फूल निर्माण के समय भूमि में नमी की कमी नहीं होनी चाहिए। खरपतवार नियंत्रण फूलगोभी की फसल के साथ उगे खरपतवारों की रोकथाम के लिए आवश्यकता अनुसार निराई-गुड़ाई करते रहे चूँकि फूलगोभी उथली जड़ वाली फसल है इसलिए उसकी निराई-गुड़ाई ज्यादा गहरी न करें और खरपतवार को उखाड़ कर नष्ट कर दें।

खरपतवार नियंत्रण

फूलगोभी में फूल तैयार होने तक दो-तीन निकाई-गुड़ाई से खरपतवार का नियंत्रण हो जाती है, परन्तु व्यवसाय के रूप में खेती के लिए खरपतवारनाशी दवा स्टाम्प 3.0 लीटर को 1000 लीटर पानी में घोल कर /हेक्टेयर का छिड़काव रोपण के पहले काफी लाभदायक होता है।

निकाई-गुड़ाई तथा मिट्टी चढ़ाना

पौधों की जड़ों के समुचित विकास हेतु निकाई-गुड़ाई अत्यंत आवश्यकत है। इस क्रिया से जड़ों के आस-पास की मिट्टी ढीली हो जाती

है और हवा का आवागमन अच्छी तरह से होता है जिसका अनुकूल प्रभाव उपज पर पड़ता है।

सूक्ष्म तत्वों का महत्व एवं उनकी की से उत्पन्न विकृतियाँ

बोरन: बोरन की कमी से फूलगोभी का खाने वाला भाग छोटा रह जाता है। इसकी कमी से शुरू में तो फूलगोभी पर छोटे-छोटे दाग या धब्बा दिखाई पड़ने लगते है। तथा बाद में पूरा हल्का गुलाबी, पीले या भूरे रंग का हो जाता है।जो खाने में कडुवा लगता है। फूलगोभी एवं फूल का तना खोखला हो जाता है और फट जाता है। इससे फूलगोभी की उपज तथा मांग दोनों में कमी आ जाती है। इसके रोकथाम के लिए बोरेक्स 10-15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से अन्य उर्वरक के साथ खेत में डालना चाहिए।

मालीब्डेनम: ऐसे सूक्ष्म तत्व की कमी से फूलगोभी का रंग गहरा हरा हो जाता है और किनारे से सफेद होने लगती है जो बाद में मुरझाकर गिर जाती है। इससे बचाव के लिए 1.0 से 1.50 किलोग्राम मालीब्डेनम प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी में मिला देना चाहिए। इससे फूलगोभी का खाने वाला भाग अर्थात कर्ड पूर्ण आकृति को ग्रहण कर ले एवं रंग श्वेत अर्थात उजला एवं चमकदार हो जाये।

प्रमुख कीड़े एवं रोकथाम

फूलगोभी में मुख्य रूप से लाही, गोभी, मक्खी, हीरक पृष्ठ कीट, तम्बाकू की सूड़ी आदि कीड़ों का प्रकोप होता है। लाही कोमल पत्तियों का रस चूसती है। खासकर जाड़े के समय कुहासा या बदली लगी रहे तो इसका आक्रमण अधिक होता है। गोभी मक्खी पत्तियों में छेदकर अधिक मात्रा में खा जाती है। हीरक पृष्ठ कीट के सूड़ी पत्तियों की निचली सतह पर खाते हैं और छोटे-छोटे छिद्र बना लेते हैं। जब इसका प्रकोप अधिक मात्रा में होता है। तो छोटे पौधों की पत्तियाँ बिल्कुल समाप्त होत जाती है जिससे पौधे मर जाते हैं। तम्बाकू की सूड़ी के व्यस्क मादा कीट पत्तियों के निचली सतह पर झुण्ड में अंडे देती है। 4-5 दिनों के बाद अण्डों से सूड़ी निकलती है और पत्तियों को खा जाती है। सितम्बर से नवम्बर तक इसका प्रकोप अधिक होता है। उपरोक्त सभी कीड़ों का जैसे ही आक्रमण शुरू हो तो इमामेक्टिन बेन्जोएट, इमिडाक्लोरोपिड, किसी भी कीटनाशी दवा का 1 से 1.5 मि.ली./ली. की दर से घोल बनाकर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।

रोग एवं नियंत्रण

फूलगोभी में मुख्य रूप से गलन रोग, काला विगलन, पर्णचित्ती, अंगमारी, पत्ती का धब्बा रोग तथा मृदु रोमिल आसिता रोग लगते हैं। वह फफूंदी के कारण होता है। यह रोग पौधा से फूल बनने तक कभी भी लग सकती है। पत्तियों की निचली सतह पर जहां फफूंदी दीखते हैं उन्हीं के उपर पत्तियों के ऊपरी सतह पर भूरे धब्बे बनते है जो कि रोग के तीव्र हो जाने पर आपस में मिलकर बड़े धब्बे बन जाते हैं। काला गलन नामक रोग भी काफी नुकसाननायक होता है। रोग का प्रारंभिक लक्षण श्टश् आकार में पीलापन लिए होता है। रोग का लक्षण पत्ती के किसी किनारे या केन्द्रीय भाग से शुरू हो सकता है। यह बैक्टीरिया के कारण होता है। इससे बचाव के लिए रोपाई के समय बिचड़े को स्ट्रेप्टोमाइसीन या प्लेन्टोमाइसीन के घोल से उपचारित कर ही खेत में लगाना चाहिए। (दवा की मात्रा-आधा ग्राम दवा$1 लीटर पानी) बाकी सभी रोगों से बचाव के लिए फफूंदीनाशक दवा इंडोफिल एम. 45 का 2 ग्राम या बइटाक्स का 3 ग्राम 1 लीटर पानी की दर से घोल बनाकर आवश्यकतानुसार छिड़काव करना चाहिए।

गोभी वर्षीय फसलों को ऐसे क्षेत्र में उगाना नहीं चाहिए जिनमें इन रोगों का प्रकोप हो रहा हो सरसों वाले कुल के पौधों को इसके पास न उगायें। फूलगोभी की कटाई तब करें जब उसके फूल पूर्ण रूप से विकसित हो जाएँ। फूल ठोस और आकर्षक होना चाहिए। जाति के अनुसार रोपाई के बाद अगेती 60-70 दिन, मध्यम कटाई फूलगोभी की कटाई तब करें जब उसके फूल पूर्ण रूप से विकसित हो जाएँ। फूल ठोस और आकर्षक होना चाहिए। जाति के अनुसार रोपाई के बाद अगेती 60-70 दिन, मध्यम 10-100 दिन, पछेती 110-190 दिन में कटाई के लिए तैयार हो जाती है।

उपज

यह प्रति हे. 200-250 कुंतल तक उपज मिल जाती है।

भण्डारण

फूलों में पत्तियां लगे रहने पर 85-90 प्रतिशत आर्द्रता के साथ 14.22 डिग्री सेल्सियस तापमान पर उन्हें एक महीने तक रखा जा सकता है।

ISSN: 3049-2211

कृषक मंच - मई 2026 संस्करण

लोकप्रिय लेखों के लिए आमंत्रण

वेबसाइट: krishakmanch.com

अंतिम तिथि: 28 मई 2026

लेख के विषय:

- कृषि विज्ञान के प्रमुख क्षेत्र: एग्रोनॉमी, बागवानी, कीट विज्ञान, रोग विज्ञान, कृषि प्रसार, कृषि अर्थशास्त्र, जैव प्रौद्योगिकी आदि।
- नवीनतम कृषि तकनीकें।
- फसल प्रबंधन एवं रोग नियंत्रण।
- जैविक खेती एवं प्राकृतिक कृषि।
- जल संरक्षण व सिंचाई तकनीकें।
- सरकारी योजनाएं।

हमारे व्हाट्सएप समूह से जुड़ें: